

प्रश्न 1. भारत की रक्षा व्यवस्था पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

उत्तर-भारत की रक्षा नीति उपमहाद्वीप के विभिन्न देशों के साथ पारस्परिक सहयोग और समझौते के द्वारा शान्ति को बढ़ाना और उसे स्थायित्व देना है और साथ ही साथ, आक्रमण के निरुद्ध अपने बचाव के लिए रक्षा सेनाओं को सुसज्जित रखना है।

राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है, किन्तु राष्ट्रीय रक्षा का उत्तरदायित्व मंत्रिमण्डल का है। रक्षा से सम्बन्धित सभी मामलों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। सेनाओं के प्रशासन और कार्य संचालन का नियन्त्रण रक्षा मन्त्रालय तथा तीनों सेनाओं के मुख्यालय (रक्षामन्त्रालय) करते हैं। तीनों सेनाओं का समन्वित विकास सुनिश्चित करने के लिए तीनों सेनाओं के मुख्यालयों को नीति सम्बन्धी मामलों पर भारत सरकार के निर्णय भेजने, उनके कार्यान्वयन के लिए तथा रक्षा-व्यय के लिए संसद से वित्तीय स्वीकृति लेने के लिए केन्द्रीय ऐजेंसी के रूप में कार्य करता है।

संगठन - तीनों सेनायें अपने-अपने सेनाध्यक्षों के अधीन कार्य करती हैं। तीनों सेनाओं के सेनाध्यक्ष निम्न प्रकार हैं -

- (1) थलसेनाध्यक्ष
- (2) नौसेनाध्यक्ष
- (3) वायुसेनाध्यक्ष

(1) **थलसेना** - थलसेना का मुख्यालय नई दिल्ली में है। थलसेनाध्यक्ष की सहायता के लिए थल सेना के वाइस चीफ तथा पाँच अन्य मुख्य स्टाफ अधिकारी होते हैं - डिप्टी चीफ आफ आर्मी स्टाफ, एडजुटेंट जनरल, क्वार्टर मास्टर-जनरल, मास्टर-जनरल आफ आर्डिनेन्स और सेना उचिव तथा एक शाखा के मुख्य अधिकारी अर्थात् इंजीनियर-इन-चीफ।

थलसेना पाँच कमानों में संगठित है : पश्चिमी, पूर्वी, उत्तरी, दक्षिणी और मध्यवर्ती। प्रत्येक कमान लेफ्टिनेन्ट जनरल, पद के 'जनरल आफिसर कमांडिंग-इन चीफ' के अधीन होती है। जनरल आफिसर कमांडिंग-इन-चीफ निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र का मांडर होता है और क्षेत्रीय तथा स्थित टुकड़ियाँ उसी की कमान के अन्तर्गत आती हैं। कोर, डिवीजन और ब्रिगेड मुख्य क्षेत्रीय संगठन हैं जोकि क्रमशः लेफ्टिनेन्ट जनरल के पद के जनरल आफिसर कमांडिंग, मेजर जनरल के पद के जनरल आफिसर कमांडिंग और ब्रिगेडियर के अधीन आते हैं। स्थिर टुकड़ियाँ क्षेत्रों, स्वतन्त्र उपक्षेत्रों और उपक्षेत्रों में बंटी होती हैं। क्षेत्र की कमान मेजर जनरल पद के एक जनरल आफिसर कमांडिंग के जिम्मे होती है और स्वतन्त्र उपक्षेत्र तथा उपक्षेत्र की, एक ब्रिगेडियर के अधीन होती है।

थलसेना कई शाखाओं और सेवाओं में संगठित है। ये हैं: बख्तरबन्द कोर, तोपखाना रेजीमेंट, इंजीनियर कोर, सिगनल कोर, इन्फैंट्री, सेना सेवा कोर, सेना नर्सिंग सेन, मोना मेडिकल कोर, आर्मी डेंटल कोर, आर्मी आर्डिनेन्स कोर, इलेक्ट्रिकल और मैकेनिकल इंजीनियर

कोर, रिमाउन्ट और वेटरिनरी कोर, मिलिटरी फार्म सेवा, सेना शिक्षा कोर, इंटेलिजेंस कोर, मिलिटरी पुलिस कोर, जज एडवोकेट जनरल विभाग, सेना शारीरिक प्रशिक्षण कोर, पायनियर कोर, सेना डाक सेवा कोर, भर्ती विभाग, रिकार्ड आफिस, कालेज, स्कूल, डिपो, वाल अधिष्ठान तथा चयन केन्द्र प्रादेशिक सेना तथा डिफेन्स सिव्योरिटी कोर।

(2) नौसेना - भारतीय नौसेना के कार्य संचालन का नियन्त्रण नौसेनाध्यक्ष नौसेना मुख्यालय से तीन कमानों के द्वारा करते हैं: पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी कमान। प्रत्येक कमान फ्लैग आफिसर कमांडिंग-इन-चीफ के अधीन संगठित है। इनके मुख्यालय क्रमशः मुम्बई, विशाखापत्तनम तथा कोचीन में स्थित हैं। नौसेनाध्यक्ष की सहायता पाँच मुख्य स्टाफ अधिकारी करते हैं। इनके पद के नाम हैं : नौसेना स्टाफ के वाइस चीन तथा लाजिस्टिक्स और प्रशासन अधिकारी।

नौसेना में दो बेड़े हैं - पश्चिमी बेड़ा और पूर्वी बेड़ा। इन बेड़ों से वायुयान वाहक, विध्वंसक, एक विनाशक रणपोत (फ्रिगेट) हैं, जिनमें कुछ आधुनिकतम पनडुब्बीमार और विमानभेदी। रणपोत, पनडुब्बीमार गश्ती नौकाएँ, पनडुब्बियाँ, एक पनडुब्बी डिपो जहाज और विशेष पोतें हैं। नौसेना के पास काफी बड़ा हवाई बेड़ा है जिसमें कई प्रकार के हवाई जहाज तथा हेलिकाप्टर शामिल हैं। इसके अलावा कुछ सर्वेक्षण जहाज, फ़ीट टैंकर और अनेक सहायक जहाज भी हैं। आधुनिकतम सुविधाओं से सज्जित आई. एन. एस. विक्रान्त को हाल ही में सी हैरियर नामक विमान प्राप्त हुए हैं। इन विमानों के लम्बवत् उड़ान भरने व उतरने के कारण नौसेना की युद्ध की क्षमता में काफी बढ़ोतरी हुई है। इसके अतिरिक्त नौसेना में सर्वेक्षण जहाज, फ़लीट टैंकर लैंडिंग क्राफ्ट व अन्य कई सहायक जहाज हैं। सर्वेक्षण इकाई ने उन समुद्रों को चिन्हित किया है जिनके कारण उनके तट बदलते रहते हैं। भारतीय नौसेना सर्वेक्षण द्वारा बनाया गया समुद्री नौवहन नक्शा अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप बनाया गया तथा इसका इस्तेमाल विश्व की अन्य नौसेनाओं द्वारा भी किया जाता है।

अण्डमान व निकोबार के नौसेना अधिकारी-फोरट्रेस कमांडर के अधीन देश की एकमात्र ऐसी कमान है जो बंगाल की खाड़ी में स्थित द्वीपों व उसके आस-पास के विशेष आर्थिक क्षेत्रों का सुरक्षा कार्य करती है। पोर्ट ब्लेयर में हाल ही में चालू किए गए नौसेना वायु स्टेशन आई. एन. एस. उत्क्रोश इन छितरे हुए द्वीपों की आकाशीय रक्षा ही नहीं करता अपितु नागरिक प्रशासन व द्वीप के दूर-दराज के लोगों को समयानुकूल एवं प्रभावी सहायता भी प्रदान करता है। भारतीय नौसेना की यूनिटें अरब की खाड़ी, अफ्रीका व दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की सद्भावना यात्रायें भी करती हैं।

तट रक्षक - तट रक्षक संगठन का, संघ की सशस्त्र सेना के रूप में भारत के तटवर्ती और समुद्रवर्ती क्षेत्रों के राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए 19 अगस्त, 1978 को तट रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत गठन किया गया। इस सेवा, जिसका प्रशासनिक नियन्त्रण रक्षा मंत्रालय के अधीन है, का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। चूँकि राष्ट्रीय तटवर्ती क्षेत्रों का रक्षा दायित्व तट रक्षक संगठन का है इसलिए इसे तीन क्षेत्रों - पश्चिमी, पूर्वी और अण्डमान और निकोबार में विभाजित किया गया है। इनके क्षेत्रीय मुख्यालय क्रमशः मुम्बई, चेन्नई और पोर्ट ब्लेयर में स्थित हैं। इन क्षेत्रों को दस जिला तटरक्षक उप क्षेत्रों में विभाजित किया गया है जिनमें से 8 तटवर्ती राज्यों में (प्रत्येक में एक) व दो अण्डमान व निकोबार में स्थित है। वाडिनर (गुजरात), मंडपम (तमिलनाडु)

और हल्दिया (पश्चिम बंगाल) में इस समय तट रक्षक जिला मुख्यालय/स्टेशन कार्यरत हैं। गोवा में भी तट रक्षक एयर एक्लेव कार्य कर रहा है। वर्ष 1985 के दौरान कैम्पबल खाड़ी (अंडमान व निकोबार क्षेत्र) में स्थित जिला मुख्यालय को गतिशील बनाया गया।

तट रक्षक दल उपलब्ध साधनों द्वारा भारतीय समुद्रवर्ती क्षेत्रों में गैर-कानूनी रूप से मछली पकड़ने वाले अनधिकृत विदेशी जहाजों पर रोक लागता है। वर्ष 1984-85 के दौरान कानून तोड़ने के अपराध में 18 विदेशी मछली पकड़ने के जहाज पकड़े गए जिनके निरुद्ध कानूनी कार्यवाही की गई।

इस संगठन के जहाज नियमित रूप से सीमा शुल्क अधिकारियों को उनके तस्कर विरोधी अभियान में सहायता देते हैं। वर्ष 1984-85 के दौरान तट रक्षक जहाजों द्वारा लगभग 3.4 करोड़ रुपये का तस्करी का माल पकड़ा गया। इसके अतिरिक्त, तट रक्षक जहाज निम्नलिखित कार्य भी करते हैं। खोज व बचाव कार्य, अपने समुद्रवर्ती क्षेत्रों में पर्यावरण नियंत्रण कार्य, उड़ीसा के तट पर जंगली जानवरों का संरक्षण कार्य तथा पाक खाड़ी में भारतीय मछुआरों को सहायता कार्य।

तट रक्षक संगठन अभी भी विन्यास अवस्था में है और इसके सैन्य-स्तर, के क्रमिक विकास से इसके कार्य-क्षेत्र और गतिविधियों के दायरे में विस्तार होगा।

(3) वायुसेना - कार्य सम्बन्धी एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार भारतीय वायु सेना का गठन किया गया है। वायुसेना की युद्ध सम्बन्धी पाँच कमानें हैं। ये हैं : पश्चिमी वायु कमान, दक्षिणी-पश्चिमी वायु कमान, मध्य वायु कमान, पूर्वी वायु कमान और दक्षिणी वायु कमान। इसके अतिरिक्त, दो अन्य कार्यकारी कमान हैं : रख-रखाव कमान एवं प्रशिक्षण कमान।

वायु सेना मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। वायु सेनाध्यक्ष की सहायता के लिए पाँच मुख्य स्टॉफ अधिकारी हैं - वायु सेना के वाइस चीफ, वायुसेना के डिप्टी चीफ, एयर आफिसर इंचार्ज (प्रशासन), एयर आफिसर-इन्चार्ज (रख-रखाव) और एयर आफिसर इन्चार्ज (कार्मिक)। इन पाँच मुख्य स्टाफ अधिकारियों की सहायता निदेशक करते हैं।

वायु सेना के बेड़े में 45 स्क्वाड्रन हैं। इनमें कई प्रकार के लड़ाकू विमान, लड़ाकू बम वर्षक, लड़ाकू-अवरोधक, बमवर्षक, परिवहन तथा संभारतन्त्र वाहिकी विमान हैं। लड़ाकू विमानों में हंटर, अजीत, मिग-23 तथा जंगुआर शामिल हैं। हाल ही में प्राप्त मिराज-2000 को भारतीय वायुसेना में शामिल किया गया है तथा देश में ही बने मिग-27 विमान भी शीघ्र ही हवाई बेड़े में शामिल हो जायेंगे। जंगुआर विमान, बमवर्षक विमान कैनबरा का स्थान लेगा। परिवहन विमानों में हैं : आई एल-76, ए. एन-12, ए. एन-32, फेयरचाइल्ड पैकेट, डकोटा, कैरिब, बोइंग-737 तथा देश में निर्मित एच एस-748। डकोटा विमानों को बदला जा रहा है तथा पैकेट विमानों को भी इस साल तक बदल दिया जाएगा। डिवोन और ऑटर विमानों का स्थान डारनिअर 228 लगा। हेलिकॉप्टरों में हैं : एम आई-8, चीता और चेतक, चीता और चेतक हेलिकॉप्टरों का निर्माण देश में ही किया जा रहा है। हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लि. द्वारा निर्मित एच पी टी 52 विमान बुनियादी प्रशिक्षण के काम आते हैं। इसने हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स द्वारा निर्मित प्रथम बुनियादी प्रशिक्षण विमान एच टी 2 का स्थान लिया है। एच जे टी - 16 (किरण) तथा पोलैण्ड से खरीदे इस्क्रा विमानों को बुनियादी प्रशिक्षणयान के रूप में उपयोग किया जा रहा है। एच एस-748 को परिवहन प्रशिक्षण विमानों के रूप में उपयोग किया जा रहा है।

भारतीय वायु सेना के एस आई-8 हेलिकाप्टरों में अंटार्कटिका अभियान हेतु विशेष रूप से परिवर्तन किया गया।

भारतीय वायु सेना का शुभारम्भ चार वेस्टलैंड वपीति विमानों के साथ 1932 में कराची में हुआ था। 1982 में इसने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई। अपनी युद्ध क्षमता बढ़ाने के लिए इसने पिछले कुछ समय में अनेक आधुनिक शस्त्र हासिल किए हैं। परिवहन तथा युद्ध के विमानों में आधुनिक जंगी उपकरण फिट किए जा रहे हैं ताकि सामरिक उड़ानें सुरक्षित एवं पूर्ण रूप से सही और सफल बनें। जमीन पर वायु सुरक्षा में सुधार हेतु पुराने राडारों के स्थान पर स्वचालित आकड़ा-संचालन तन्त्र को लगा कर राडार तन्त्र का भी आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

प्रश्न 2. भारत में गैर पारम्परिक ऊर्जा के स्रोत एवं सम्भावनाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्रश्न

उत्तर

भारत में अक्षय ऊर्जा क्षमता

अथ

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

अथ

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

अथ

हम यहां मुख्यतः सौर और पवन ऊर्जा की चर्चा करेंगे क्योंकि न केवल उनकी उपलब्ध क्षमता असीमित है बल्कि उनकी स्थापित क्षमता भी बाकि अक्षय स्रोतों से अधिक है।

वर्ष 2015 में हमने अपनी आजादी का 68वां वर्ष पूरा किया। इन 68 वर्षों में भी देश के हर गांव तक विद्युत नहीं पहुंच पाई थी। उस समय भी 18500 ऐसे गांव थे जहां बिजली की सुविधा नहीं थी। वर्तमान सरकार ने अपना लक्ष्य इन सभी गांव तक 1 मई 2018 तक बिजली पहुंचाने का रखा है। यह लक्ष्य केवल पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों से संभव नहीं है, इसके लिए गैर पारंपरिक स्रोतों का भी उपयोग आवश्यक है।

सौर ऊर्जा

प्रश्न

भारत में गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास में सबसे पहला ध्यान सौर ऊर्जा पर दिया गया। भारत की घनी आबादी और उच्च सौर आतपन सौर ऊर्जा को भारत के लिए एक आदर्श ऊर्जा स्रोत बनाता है। सन् 1978 में सार्वजनिक क्षेत्र की सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (सीईएल), गाजियाबाद में फोटो वोल्टाइक सेल पर शोध एवं विकास का कार्य प्रारंभ हुआ। 1985-1990 के बीच भारत में सोलर फोटो वोल्टाइक सेल का व्यापारिक उत्पादन प्रारंभ हो गया। इसी समय दूर दराज के गांवों का विद्युतीकरण भी सौर ऊर्जा की सहायता से प्रारंभ हुआ। आंध्र प्रदेश का सलिजिपल्ली देश का पहला ऐसा गांव बना जिसका पूर्ण विद्युतीकरण सौर ऊर्जा की सहायता से हुआ। लगभग इसी समय अलीगढ़ एवं मऊ जिलों में पहले 100 किलोवाट आंशिक ग्रिड इंटरैक्टिव एसपीवी बिजली परियोजनाओं को स्वीकृत किया गया। प्रारंभ में इनकी उच्च कीमतों के कारण ये बहुत ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाए। उच्च कीमतों का कारण सिलिकोन वेफर का आयात था।

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

अथ

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

प्रश्न

1992 गुडगांव में इसका उत्पादन प्रारंभ होने के बाद इसकी कीमतों में कमी आई और इसकी लोकप्रियता बढ़ी। लगभग इसी समय अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय की स्थापना के साथ ही 3 उत्कृष्टता के केंद्रों- सौर ऊर्जा केंद्र, पवन ऊर्जा प्रौद्योगिकी केंद्र और राष्ट्रीय नवीकरणीय ऊर्जा संस्थान की भी स्थापना की गयी। इसके बाद सौर ऊर्जा उत्पादन का विकास होने लगा। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में वास्तविक विकास वर्ष 2009 के बाद प्रारंभ हुआ जब तत्कालीन प्रधानमंत्री ने जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय सोलर मिशन (जेएलएनएसएम) की घोषणा की।

जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन योजना की शुरुआत 2009 में जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के एक हिस्से के रूप में की गई।

इस मिशन का लक्ष्य 2022 तक 20 हजार मेगावॉट क्षमता वाली ग्रिड से जोड़ी जा सकने वाली सौर बिजली की स्थापना और 2 हजार मेगावॉट के समतुल्य गैर-ग्रिड सौर संचालन के लिए नीतिगत कार्य योजना का विकास करना है। इसमें सौर तापीय तथा प्रकाश वोल्टीय दोनों तकनीकों के प्रयोग का अनुमोदन किया गया। इस मिशन का उद्देश्य सौर ऊर्जा के क्षेत्र में देश को वैश्विक नेता के रूप में स्थापित करना है। मिशन के लक्ष्य में (1) 2022 तक 20 हजार मेगावॉट क्षमता वाली-ग्रिड से जुड़ी सौर बिजली पैदा करना, (2) 2022 तक दो करोड़ सौर लाइट सहित 2 हजार मेगावॉट क्षमता वाली गैर-ग्रिड सौर संचालन की स्थापना (3) 2 करोड़ वर्गमीटर की सौर तापीय संग्राहक क्षेत्र की स्थापना (4) देश में सौर उत्पादन की क्षमता बढ़ाने वाली का अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण और (5) 2022 तक ग्रिड समानता का लक्ष्य हासिल करने के लिए अनुसंधान और विकास के समर्थन और क्षमता विकास क्रियाओं का बढ़ावा शामिल है। इस मिशन को तीन चरणों में लागू किया जाना है।

पिछले कुछ वर्षों में सौर ऊर्जा के क्षेत्र में हुए विकास को हम निम्नलिखित आंकड़े से समझ सकते हैं। जहां वर्ष 2005 में केवल 6.4 मेगावॉट क्षमता जोड़ी जा रही थी वही 2010 में 100 मेगावॉट को पार कर गयी, 2011 में 300 मेगावॉट जोड़ी गयी, 2012 में लगभग 800 मेगावॉट, 2013 में 1100 मेगावॉट, 2014 में लगभग 300 मेगावॉट, 2015 में 1100 मेगावॉट एवं 2016, 31 मार्च तक 3000 मेगावॉट क्षमता जोड़ी गयी।

हैंडबुक ऑन तालिका 2 : प्रतिवर्ष स्थापित सोलर रेडिएशन सौर पीवी ओवर इंडिया के अनुसार, भारत के अधिकांश भाग में एक वर्ष में 250-300 धूप निकलने वाले दिनों सहित प्रतिदिन प्रति वर्गमीटर 4.7 किलोवॉट घंटे का सौर विकिरण प्राप्त होता है। राजस्थान और गुजरात में प्राप्त सौर विकिरण उड़ीसा में प्राप्त विकिरण की अपेक्षा ज्यादा है। देश में 30-50 मेगावॉट प्रतिवर्ग किलोमीटर छाया रहित खुला क्षेत्र होने के बावजूद उपलब्ध क्षमता की तुलना में देश में सौर ऊर्जा का दोहन काफी कम है (जो 31.5.2014 के अनुसार 2647 मेगावॉट है)। वर्तमान प्रधानमंत्री ने पद संभालते ही सौर ऊर्जा की क्षमता बढ़ाने के लिए काफी प्रयास किए जिसके फलस्वरूप 2016 मकर संक्रांति/पोंगल तक भारत में सौर ऊर्जा की स्थापित क्षमता 5,000 मेगावॉट का जादुई आंकड़ा पार कर गई।

सौर पीवी

वर्ष	संचयी क्षमता
2010	
2011	161
2012	461
2013	1,205
2014	2,319
2015	2,632
2016	3,743
	6,763

मेगावॉट में नोट : 31 मई 2016 को सौर ऊर्जा क्षमता की संचयी स्थापित क्षमता 7568 मेगावॉट हो चुकी है।

[6] बी. ए./बी.एस.सी. - III : रक्षा विज्ञान-तृतीय प्रश्न-पत्र * दर्शितानुसार

2015 में हुए पेरिस जलवायु सम्मेलन में प्रधानमंत्री ने भारत के नेतृत्व में 100 से अधिक 'सूर्यपुत्र' देशों के संगठन इंटरनेशनल एजेंसी फॉर सोलर टेक्नोलॉजीज एंड एनर्जीकोऑप की भी घोषणा की। इसके साथ ही सौर ऊर्जा के विकास के लिए 100 अरब डॉलर का एक फंड बनाया गया है ताकि वर्ष 2022 के 100 गीगावॉट के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। स्वतंत्र आधारित सौर ऊर्जा केन्द्रों के अतिरिक्त अब तेज़ी से सौर ऊर्जा उत्पादन केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। इस प्रकार की परियोजना, देश के अलग-अलग क्षेत्रों में स्थापित की गयी हैं जैसे कोलकाता के पास विक्रम सोलर, नर्मदा नहर के ऊपर गुजरात में, कोझिकोड में एवं लोकतक झील के ऊपर मणिपुर में। इनसे सबसे बड़ा लाभ ये होगा कि ठण्डाऊ या अन्य प्रकार की भूमि सोलर प्लेट लगाने के कारण बेकार नहीं होगी साथ ही वाष्प उत्सर्जन में भी कमी आने की उम्मीद है।

पवन ऊर्जा

भारत में पवन ऊर्जा उत्पादन का प्रारंभ वर्ष 1986 से माना जा सकता है जब महाराष्ट्र गुजरात इत्यादि राज्यों में पवन टरबाइन लगाये गए। दुनिया के बाकि देशों की तुलना में नया तालिका 3 : पवन ऊर्जा क्षमता होने के बाद भी भारत इस क्षेत्र के काफी प्रगति कर चुका है और आज कुल स्थापित क्षमता और उत्पादन दोनों में हम विश्व में 5वें स्थान पर हैं। पवन ऊर्जा के विकास के लिए 1990 के दशक में पवन ऊर्जा प्रौद्योगिकी केन्द्र की स्थापना की गयी। इसके बाद इसमें उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। आज विश्व का दूसरा सबसे बड़ा विंड फार्म तमिलनाडु में अवस्थित है। पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में पवन ऊर्जा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिसे हम निम्नलिखित तालिका से समझ सकते हैं।

स्थापित क्षमता

वित्तीय वर्ष	संचयी क्षमता
2005	6,270
2006	7,850
2007	9,587
2008	10,925
2009	13,064
2010	16,084
2011	18,421
2012	20,149
2013	21,264
2014	23,354
2015	26,769

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि हमने बहुत तीव्र गति से इस क्षेत्र में विकास किया है इसके बाद अभी बहुत कुछ किया जाना आवश्यक है। पवन ऊर्जा के सही विकास के लिए सर्वप्रथम इसके लिए सही स्थान का चुनाव आवश्यक था। इस हेतु 2011 में एक जीआईएस मंच का उपयोग कर डॉ जामी हुसैन द्वारा मूल्यांकन किया गया था। पुनः 2012 में लॉरेंस बर्कले

नेशनल लेबोरेटरी, अमेरिका द्वारा एक स्वतंत्र अध्ययन किया गया जिसके बाद इसके लिए पोटेशियल स्थानों को चिह्नित किया जा सका। वर्ष 2015 में, वर्ष 2022 तक एमएनआरई से पवन ऊर्जा उत्पादन क्षमता के लिए 60,000 मेगावॉट अर्थात् 60 गीगावॉट का लक्ष्य निर्धारित किया गया। 30 मार्च, 2016 तक पवन ऊर्जा की कुल स्थापित क्षमता 26866 मेगावॉट थी। इसमें बेहद तीव्र विकास की संभावनाएं हैं।

भूतापीय ऊर्जा

भूतापीय ऊर्जा-प्रणाली के अंतर्गत भूगर्भीय ताप एवं जल की अभिक्रिया से गर्म वाष्प उत्पन्न कर ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए अनेक प्रविधियां अपनायी जाती हैं।

भारत के भूतापीय ऊर्जा के स्रोत के उपयोग के लिए सीमित कार्य क्षेत्र है। हालांकि नेशनल एयरोनॉटिकल लेबोरेटरी के तत्वाधान में हिमाचल प्रदेश के मणिकर्ण में एक पायलट पावर परियोजना और लद्दाख की पूर्ण घाटी में (जम्मू-कश्मीर) अन्वेषणात्मक अध्ययन किए जा रहे हैं। राष्ट्रीय भूभौतिकी अनुसंधान संस्थान हैदराबाद द्वारा पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र पर किया गया अध्ययन झारखंड में सूरजखंड और उत्तराखंड में तपोवन में शक्तिशाली भूतापीय स्थलों के अस्तित्व को दर्शाता है। परन्तु इसका विकास अभी प्रारंभिक चरण में ही है। भारत में 350 भूतापीय ऊर्जा के संभावित क्षेत्र हैं।

31 मार्च, 2016 तक भारत में जैव भार आधारित ऊर्जा का कुल उत्पादन 5940 मेगावॉट को पार कर चुका है। मंत्रालय ने मध्य नब्बे के दशक के बाद से बायोमास पावरसह-उत्पादन कार्यक्रम को लागू किया गया है। 4760 मेगावॉट क्षमता के लिए कुल लगभग 500 बायोमास बिजली और सह उत्पादन परियोजनाओं की कुल ग्रिड से बिजली के उपलब्धता लिए देश में स्थापित किया गया है। इसके अलावा, लगभग 30 बायोमास बिजली के बारे में 350 मेगावॉट की कुल परियोजनाओं के कार्यान्वयन के विभिन्न चरणों में हैं। करीब 70 सह उत्पादन परियोजनाओं अधिशेष क्षमता 800 मेगावॉट की कुल साथ कार्यान्वयन के अधीन हैं।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भविष्य में गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत ही हमारे मुख्य स्रोत के रूप में काम करेंगे। हमारी ऊर्जा आवश्यकताओं की निर्बाध पूर्ति इन्हीं स्रोतों के द्वारा संभव है।

प्रश्न 3. सामुद्रिक तकनीक का असैनिक एवं सैनिक उपयोग के मध्य संबंधों का विवेचन कीजिए।

अथवा भारत की सामुद्रिक सुरक्षा एवं समस्याओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

भारत की सामुद्रिक सुरक्षा समस्याएँ
भारत एक गुटनिरपेक्ष राष्ट्र है जिसकी अपनी एक स्वतन्त्र नीति है। सुरक्षा के दृष्टिकोण से भारत की अनेक समस्याएँ हैं। आज के अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में शक्ति का यथार्थ बहुत तेजी से बदल रहा है। अभी तक विश्व में केवल दो महाशक्तियों की धाक थी। किन्तु अब चीन की शक्ति भी उपेक्षणीय नहीं रही। चीन का एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरना अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षितिज पर शक्तियों के जिस नये त्रिकोण की सम्भावना उजागर करता है उससे अब भारत आँख नहीं मूंद सकता। बांग्ला देश के सन्दर्भ में भारत ने जो भूमिका निभाई है उससे शुभ्य हो

विश्व के अनेक राष्ट्र उस पर दाँत गड़ाये हुए हैं। भारत की भौगोलिक संरचना इस प्रकार है कि उसकी सीमायें तीन ओर से विशाल हिन्द महासागर से घिरी हुई हैं। यदि हमारी 3535 फीट लम्बी समुद्री सीमा असुरक्षित है तो हम सुरक्षित नहीं रह सकते। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि भारत के भाग्य का फैसला समय-समय पर समुद्र द्वारा हुआ, स्थल द्वारा नहीं। मार्शल जुकोव के अनुसार -

When Marshal Zhukow visited India in 1957, he told a group of Naval Officers at Vishakhapatnam that those who invaded India through the northern passes were assimilated in the main stream of Indian life, but those who came by sea remained as conquerors.

वर्तमान तनावपूर्ण विश्व राजनीति एवं गुटबन्धियों के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि युद्ध का केन्द्र मिडिल ईस्ट से हटकर एशिया की ओर बढ़ रहा है और महाशक्तियों की आँखें हिन्द महासागर पर केन्द्रित हो गयी हैं। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि एशिया के राष्ट्रों में परस्पर मेल नहीं है। हिन्द महासागरीय देशों में कोई भी ऐसा राष्ट्र नहीं जो महाशक्तियों के प्रवेश को रोक सके। सभी राष्ट्रों की नौसेनायें अपने क्षेत्रीय समुद्र पर ही नियन्त्रण की क्षमता रखती हैं।

अमेरिका का प्रशान्त महासागर पर पूर्ण प्रभुत्व है। इस प्रकार अमेरिका का प्रभाव क्षेत्र हिन्द महासागर तक हो जाता है। ब्रिटेन, अमेरिका, जापान तथा अब चीन भी हिन्द महासागर पर अधिकार करने की प्रतीक्षा में हैं, जो भारत के लिए स्थायी खतरा उत्पन्न हो रहा है। अमेरिका नौसैनिक कार्यवाही के उप-प्रधान एडमिरल मारिस वेसनेर ने वाशिंगटन में 'पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन' में हिन्द महासागर में अमेरिकी नौसेना की गतिविधियों के विस्तार की 'भावी योजना के सम्बन्ध में जो भी कहा था उससे स्पष्ट है कि अमेरिका इस क्षेत्र में अपने प्रभाव को बढ़ाने में सचेष्ट है। श्री वेसनेर ने कहा था कि यदि हम ऐसा नहीं करते तो मेरी समझ में इस क्षेत्र में राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक दृष्टिकोण से रूसियों का प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा। वियतनाम युद्ध समाप्त होने से अमेरिकी नौसेना की माँग कम पड़ गयी है इसलिये जापान सागर और हिन्द महासागर में हमारी गतिविधियाँ आरम्भ होगी। वर्तमान समय में लाल चीन के साथ अमेरिका के सम्बन्ध में सुधार हो रहा है और वियतनाम की ओर से अमेरिका का ध्यान भी दूसरे क्षेत्रों की ओर केन्द्रित हो रहा है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका हिन्द महासागर में ही अपने गतिविधियों के विस्तार की योजना बना रहा है। अतः अमेरिका हिन्द महासागर को शान्तिपूर्ण क्षेत्र बनाये रखने के बजाय विश्व के विभिन्न शक्ति गुटों का राजनीतिक रूप से बदलने की कोशिश कर रहा है और इस नीति में चीन को भी साथ लेकर आना चाहता है।

हिन्द महासागर को शान्त क्षेत्र बनाये रखने के लिए श्रीलंका, बर्मा, सिंगापुर, मलाया तथा अफ्रीका के पूर्वी क्षेत्र के गुटनिरपेक्ष राज्य विगत कुछ वर्षों से अत्यधिक प्रयत्नशील हैं। हिन्द-महासागर के गुट-निरपेक्ष राज्यों के निरन्तर विरोध के बावजूद भी 'आंग्ल-अमेरिकी' साँट-गाँठ, हिन्द महासागर के कतिपय अमेरिकी समर्थक राष्ट्रों द्वारा अपनायी जा रही नीति का यह परिणाम हो रहा है कि हिन्द महासागर उत्तरोत्तर विश्व की शक्ति गुट की राजनीति के चंगुल में पड़ता जा रहा है। हिन्द महासागर में उनकी कुछ दूरगामी योजनायें हैं। जिनको ये राष्ट्र परस्पर साँट-पाँठ द्वारा कार्यान्वित करना चाहते हैं। मारीशस के पास रेयूनियन (Re-union) द्वीप जहाँ अमेरिका रेडियो मार्ग दर्शन केन्द्र बना रहा है। फ़ारस की खाड़ी में बहरीन द्वीप भी अमेरिका का नौसैनिक अड्डा बन चुका है। आस्ट्रेलिया के पास 'काकोस' द्वीप समूह में भी अपना नौसैनिक अड्डा बनाने

की योजना बना रहा है। ब्रिटेन और अमेरिका के गठबन्धन से हिन्द महासागर के मध्य में स्थित डियोगार्सिया नामक द्वीप विश्व के सबसे बड़े संचार मार्ग के रूप में विकसित होने जा रहा है। भारत और इस क्षेत्र के गुटनिरपेक्ष राज्यों द्वारा प्रतिरोध किये जाने के बावजूद भी अमेरिका डियोगार्सिया में अपना नौसैनिक अड्डा स्थापित कर लिया है। आजकल हिन्द महासागर की ओर उसका ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित हो गया है। अमेरिका नौसेनाधिकारी हिन्द महासागर में सोवियत नौसैनिकों के जहाजों की मौजूदगी की दलील पेश स्वतः ही अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका कहना है कि विगत वर्षों में सोवियत संघ ने हिन्द महासागर में अपनी नौसैनिक शक्ति दूनी कर ली है और इस क्षेत्र में उसके 12 से लेकर 15 तक जहाज बराबर मौजूद रहते हैं। किन्तु यह एक बहाना मात्र है। मूल प्रश्न तो यह है कि अमेरिका इतनी तेजी के साथ इस क्षेत्र में अपनी नौसैनिक शक्ति के विस्तार के लिये इतना आतुर क्यों है? अमेरिका का हिन्द महासागर क्षेत्र में अणुचालित नौसैनिक जहाजों द्वारा युद्धाभ्यास करना तथा 'भारत-पाक संघर्ष 1971' में सातवें बेड़े को बंगाल की खाड़ी तक भेजना यह सिद्ध करता है कि वह भारत तथा अन्य गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने का कुचक्र रच रहा है। अभी वियतनाम में अमेरिका ने जिस उपनिवेशवादी नीति का परिचय दिया है उसे इस क्षेत्र के देशवासी भूले नहीं हैं। इस तरह के युद्धाभ्यास द्वारा अमेरिका इस क्षेत्र की शान्ति को भंग करना चाहता है। अतः इस क्षेत्र के सभी गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों द्वारा अमेरिका की इस नीति का कड़ा विरोध होना अति आवश्यक है।

हिन्द महासागर में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये अमेरिका से कम सचेष्ट रूस भी नहीं है। जैसे ही रूस को पता चला कि ब्रिटेन सिंगापुर से विदा ले रहा है, उसने अपनी दृष्टि भूमध्यसागर से आगे बढ़ाकर भारत की ओर कर ली है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्द महासागर पर नियन्त्रण रखने के प्रयास में भारत की अपनी स्वयं की एक विशेषता है। अतः कोई भी राष्ट्र इस सागर पर कब्जा करने के लिए भारत को मित्र बनाना चाहेगा। लगता ऐसा है कि वर्तमान राजनीति में रूस को यह सुअवसर मिल गया है। इस समय भूमध्यसागर में रूस का नाविक वर्चस्व निःसन्देह स्थापित हो गया है। सिकन्दरिया बन्दरगाह में उसकी खासी घुसनैठ है। इसके अतिरिक्त उसके जहाज हिन्द महासागर में मत्स्य, समुद्री खोज तथा तेल योजनाओं में दूर-दूर तक घुसे हुये हैं। रूस की इस चुपचाप घुसपैठ से चीन और अमेरिका के कान खड़े हो गये। अणु-शक्ति के विकास के बाद चीन अब नाविक-शक्ति को हस्तगत करने में पिल पड़ा है।

दक्षिण पूर्वी एशिया की नौसैनिक संघ में भाषण देते हुये मलयी प्रधानमन्त्री टुकू ने इस बात पर घोर चिन्ता प्रकट की थी रूस भूमध्य-सागर से आगे बढ़ रहा है, यदि वह हिन्द महासागर में घुस आया तो शान्तिमय देशों के लिये भयंकर खतरा उत्पन्न हो जायेगा। 'वर्ल्ड-टू-डे' नामक मैगजीन ने तथ्यात्मक आधार पर बताया है कि रूस आर्थिक सहायता के नाम पर करोड़ों पौण्ड हिन्द महासागरीय देशों को दे रहा है। अंग्रेजी बेड़े के कमान्डर हिल नार्टन ने आशंका व्यक्त की है कि रूस अब स्वेज, मलक्का तथा गुडहीप बन्दरगाहों पर भी वर्चस्व रखेगा। ब्रिटिश विदेशमन्त्री ने एक वक्तव्य में कहा है कि रूस ने 40 जंगी जहाज 10 पनडुब्बियाँ आदि इधर केवल चार वर्षों में बढ़ाकर शक्ति सन्तुलन बिगाड़ दिया है।

तात्पर्य यह है कि हिन्दमहासागर में किसी भी बाहरी स्थिति का हस्तक्षेत्र खतरे से खाली नहीं होगा। चाहे वह राष्ट्र अमेरिका हो, चीन हो या रूस हो। यद्यपि इस समय भारत के रूस के साथ बड़े ही सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए हैं। बीस वर्षीय शान्ति समझौता भी हुआ, तथा

1971 के भारत-पाक संघर्ष में संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत विरोधी प्रस्ताव पर खुलकर हमारा साथ भी दिया। किन्तु इसको ही सुरक्षा का आधार मान लेना महान् भूल होगी। क्योंकि -

"No nation has premanent friends or permanent enemies, only permanent interest. Our interest demand that we assemble sufficient power to fill the vacuum before some other country or group of powers whose interests are inimical to ours are able to do so."

रूस के डर से आस्ट्रेलिया भी भयभीत हो गया है। उसके विदेशमन्त्री गार्डनफ्रीथ ने कहा था कि आस्ट्रेलिया भी काकवर्न स्थल (आस्ट्रेलिया का पश्चिमी तट) को आधार बनाकर इस समुद्र की गश्त लगाने लगेगा। आस्ट्रेलियाल प्रधानमन्त्री ने कहा है कि हम भी अब समुद्री चौकसी का कार्य शुरू कर देंगे। असल में (SEATO) 'सीएटो' देशों के कान इसलिये भी खड़े हो गये हैं कि रूस ने चुपचाप लालसागर से आगे बढ़कर सुमाली द्वीप पर कब्जा करके अपना नौसैनिक अभ्यास शुरू कर दिया है। रूस की इस घुसपैठ को सहन करने के लिये अमेरिका कभी तैयार नहीं है। यही कारण है कि दोनों पक्षों में 'समुद्री अधिकार' का शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया है।

प्रश्न 4. भारत में प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर

प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी

भारत ने प्रक्षेपणयान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शुरूआत एस.एल.वी-3 की साधारण क्षमता से की जो 40 कि.ग्रा. श्रेणी के उपग्रह को पृथ्वी के निकट की कक्षा में भेज सकता था। इस क्षमता में सेवर्धित उपग्रह प्रक्षेपणयान (ए0एस0एल0बी0) के निर्मित होने से काफी सुधार हुआ। इन यानों ने मई 1992 व मई 1994 में सफलतापूर्वक दो उड़ाने भरी और एस.आर.ओ.एस.एस. (विस्तृत रोहिणी उपग्रह श्रृंखला) उपग्रहों को गामा-रे वर्स्ट पेयाग तथा रिकार्डिंग पोटेशियम एनेलाइजर में साथ पृथ्वी की निचली कक्षा में छोड़ा। दूसरा उपग्रह एस.आर.ओ.एस.एस.-सी-2 अभी भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आँकड़े भेज रहा है।

अब भारत में ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपणयान (पी.एस.एल.वी.) का विकास किया जा चुका है। इससे 1,200 किलोग्राम वर्ग तक के दूरसंवेदी उपग्रहों को ध्रुवीय सूर्य तुल्यकालिक कक्षा में स्थापित किया जा सकता है। विकास की पहली उड़ान पी.एस.एल.बी.डी-2 15 अक्टूबर, 1994 को हुई और इसने उपग्रह आई.पी.आर.एस.पी-2 को निर्धारित ध्रुवीय कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित किया। दूसरी एवं अंतिम विकास उड़ान पी.एस.एल.बी.डी-3 21 मार्च 1996 को हुई, जिससे आई.एस.आर.-पी-3 को निश्चित ध्रुवीय कक्षा में पहुँचा दिया। पहली संचालित उड़ान पी.एस.एल.बी.-सी-1 ने आई.आर.एस.-डी-1 को कक्षा में स्थापित किया। पी.एस.एल.बी.-2 ने भारतीय दूरसंवेदी उपग्रह, आई.आर.एस.-4 (ओसियनसेट), एक कोरियाई उपग्रह किटसेट-3 तथा एक जर्मन उपग्रह टूबसेट को 26 मई, 1999 को 727 किमी. की ध्रुवीय सूर्य तुल्यकालिक कक्षा में छोड़ा। 2000-2001 में पी.एस.एल.बी.-सी3 से आई.आर.एस.पी.-5 (क्रोटोसेट) और बेलजियम उपग्रह प्रोबा को प्रक्षेपित किया जाएगा। भू-तुल्यकालिक उपग्रह प्रक्षेपणयान (जी.एस.एल.बी.), जिसमें एक क्रोयोजेनिक चरण भी होगा तथा जो 2,500 किग्रा. के इनसेट श्रेणी के उपग्रह को भू-तुल्यकालिक स्थानांतरण कक्षा में पहुँचा सकने में सक्षम होगा, अब काफी विकसित हो चुका है और 2000-2001 तक इसका पहला विकासात्मक परीक्षण करने की योजना है।

अंतरिक्ष विज्ञान

अंतरिक्ष विज्ञान अनुसंधान के अंतर्गत मुख्य रूप से खगोलशास्त्र, खगोल भौतिकी, ग्रहों के वायु-मंडल, भू-विज्ञान, सौर-मंडल प्रणालियों और सैद्धान्तिक भौतिकी में अनुसंधान होता है। अनुसंधान-कार्य रूप से अहमदाबाद की भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला में होता है। थोड़ा-बहुत अनुसंधान-कार्य तिरुअनंतपुरम की अंतरिक्ष भौतिकी प्रयोगशाला, अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद और बंगलौर के भारतीय अनुसंधान संगठन के उपग्रह केंद्र में होता है। पृथ्वी के वातावरण पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव के अध्ययन के लिए भू-मंडल-जीवन-मंडल अनुसंधान कार्यक्रम के तहत सुनियोजित ढंग से गुब्बारों, रaketों और उपग्रहों के माध्यम से प्रयोग किए जा रहे हैं। वायुमंडलीय गति विज्ञान, वायुमंडलीय हलचल और उनके विस्तार का मापन, वायुमंडलीय प्रदूषण, हवा के दबाव की दिशा, मेघ भौतिकी आदि के लिए तिरुपति के निकट गाटांकी में राष्ट्रीय मध्य-मंडल, क्षोभ-मंडल रडार स्थापित किया गया है।

एस.आर.ओ.एस.एस. उपग्रहों में किए गए गामा-किरण विस्फोट परीक्षणों और आई.आर.एस.-पी3 उपग्रह पर एक्स-रे पेलोसेड से मिले महत्वपूर्ण आँकड़ों से उच्च ऊर्जा खगोलशास्त्र में अनुसंधान में और मदद मिली है।

अंतरिक्ष-उद्योग सहयोग

अंतरिक्ष-उद्योग सहयोग के तहत 236 से अधिक उद्योगों को 'इसरो' द्वारा विकसित उन्नत प्रौद्योगिकी का व्यावसायिक उपयोग के लिए हस्तांतरण किया गया है। उद्योगों को प्रौद्योगिकी से संबन्धित सलाह भी दी जाती है। उद्योगों द्वारा अपनी प्रौद्योगिकी क्षमता और विशेषज्ञता का इस्तेमाल करने में भी अंतरिक्ष कार्यक्रम सहायक सिद्ध हुए हैं। विमान-निर्माण, संचार और इंजीनियरिंग से जुड़ी अनेक बड़ी कंपनियों ने अंतरिक्ष हार्डवेयर के बारे में विशेष विभाग बनाए हैं। 'इसरो' द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग और उसके व्यवसायीकरण के लिए अंतरिक्ष कारपोरेशन लिमिटेड नाम से एक सरकारी कंपनी का गठन किया गया है। अंतरिक्ष लिमिटेड को एक प्रमुख अमरीकी कंपनी से पूरे विश्व में भारतीय दूरसंचाली उपग्रहों से मिलने वाले आँकड़ों को प्राप्त करने व बेचने का महत्वपूर्ण अनुबंध मिल चुका है। विश्व-भर में अनेक भू-केंद्र अब तक भारत द्वारा दिए गए उपकरणों से भारतीय दूरसंचाली उपग्रहों के आँकड़ें प्राप्त करने के लिए सुसज्जित हो चुके हैं। अंतरिक्ष लिमिटेड कई अन्य अनुबंध भी पूरे कर चुका है।

प्रश्न 5. भारतीय आंतरिक्ष कार्यक्रमों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : भारत में 1972 में अंतरिक्ष आयोग तथा अंतरिक्ष विभाग की स्थापना के साथ अंतरिक्ष कार्यक्रमों की औपचारिक शुरुआत की गई है। इस कार्यक्रम का मूल उद्देश्य दूरसंचार, टेलीविजन प्रसारण, मौसम अध्ययन और संसाधनों के सर्वेक्षण तथा प्रबंधन के क्षेत्र में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी विकसित करना, उन पर आधारित सेवाएँ उपलब्ध कराना तथा इसके लिए उपग्रहों, प्रक्षेपणवाहनों तथा संबद्ध भू-प्रणालियाँ विकसित करना है। अंतरिक्ष कार्यक्रम का कार्यान्वयन प्रमुख रूप से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्था (इसरो), राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान तथा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला के माध्यम से होता है। पिछले ढाई दशकों से भी अधिक समय में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम ने अच्छी तरह से समन्वित तथा स्वावलंबी कार्यक्रमों के माध्यम से उल्लेखनीय प्रगति की है।

इनसेट प्रणाली

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली 'इनसेट' एक बहु-उद्देशीय उपग्रह प्रणाली है। इसका उपयोग दूरसंचार, मौसम की जानकारी तथा आंकड़ों के संप्रेषण, टेलीविजन के प्रसारण तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों को देश-भर में प्रसारित करने में किया जाता है। यह अंतरिक्ष विभाग, दूरसंचार विभाग, भारतीय मौसम विभाग, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का संयुक्त उद्यम है। इनसेट अंतरिक्ष कार्यक्रम की व्यवस्था और संचालन अंतरिक्ष विभाग की जिम्मेदारी है।

सन् 1983 में इनसेट-1 बी के काम शुरू करने के साथ ही इनसेट प्रणाली की स्थापना हुई। इस समय 1991 में प्रक्षेपित पहली पीढ़ी का अंतिम इनसेट-1 डी और इससे निर्मित दूसरी पीढ़ी के चार उपग्रह इनसेट-2 बी, इनसेट-2, इनसेट-2ई व इनसेट-3बी काम कर रहे हैं, जिन्हें क्रमशः जुलाई 1993, दिसम्बर 1995, अप्रैल 1999 व मार्च 2000 में प्रक्षेपित किया गया था। इनसेट-2डीटी 'अरबस्कैट' से अक्टूबर 1997 में खरीदा गया।

इनसेट-2बी में 12सी बैंड ट्रांसपोंडर, छह वृहद सी-बैंड ट्रांसपोंडर तथा दो उच्च शक्ति वाले एस-बैंड ट्रांसपोंडर का संचार पेलोड शामिल हैं। मौसम संबंधी उपकरणों में एक अत्यधिक शक्तिशाली विघटन वाला रेडियोमीटर है, जिसका दृष्टिगत बैंड में दो कि.मी. व पारस्त्व बैंड में आठ कि.मी विघटन है। इसमें मौसम संबंधी आंकड़ों को भेजने के लिए एक ट्रांसपोंडर रखा हुआ है। इन उपग्रहों में संकट सूचक संकेतों को प्राप्त करके खोज व बचाव करने के लिए भी एक ट्रांसपोंडर लगा हुआ है।

इनसेट-2सी में इनसेट-2ए व 2वीं की भाँति संचार ट्रांसपोंडरों के अतिरिक्त व्यावसायिक संचार के लिए के यू बैंड ट्रांसपोंडर, वृहद परिधि वाले दो सी बैंड ट्रांसपोंडर, जिनमें टेलीविजन कार्यक्रम भारतीय सीमाओं के बाहर दक्षिण-पूर्व एशिया व मध्य-पूर्व की जनता तक पहुँच सकें, तथा संचल उपग्रह सेवाओं के लिए ट्रांसपोंडर शामिल हैं। इनमें मौसम संबन्धित उपकरण मौजूद नहीं हैं। इनसेट-2सी तथा इनसेट-2बी साथ-साथ भू-स्थिर कक्षाओं में स्थित हैं, जिससे कक्षाओं के लिए प्राप्त स्थान का संपूर्ण उपयोग हो सकता है। इनसेट-2ई में इनसेट-2सी की भाँति संचार के उपकरणों के अतिरिक्त, एक परिष्कृत मौसम संबन्धित उपकरण है। अंतरिक्ष विभाग ने इंटेलेसेट संस्था को इनसेट-2ई में लगे सी-बैंड की ग्यारह 36 मेगाहर्ट्ज इकाइयों के बराबर क्षमता यूनिट पट्टे पर दी है। इनसेट-3ए से इनसेट-3ई तक के पांच उपग्रहों को 1999-2002 के बीच प्रक्षेपित करने की योजना है। इनसेट-3बी 22 मार्च 2000 को छोड़ा गया। इसमें 12 वृहद सी-बैंड ट्रांसपोंडर, 3के यू-बैंक ट्रांसपोंडर और एक मोबाइल उपग्रह सेवा ट्रांसपोंडर है।

इनसेट नेटवर्क में इस समय 450 से अधिक विभिन्न प्रकार के दूरसंचार टर्मिनल काम कर रहे हैं, जिनमें से 50 टर्मिनल देश के उत्तर-पूर्वी भाग के ग्रामीण अंचल में बेतार सेवा के लिए उपयोग हो रहे हैं तथा 166 से अधिक मार्गों पर बातचीत के लिए लगभग 5,500 दो-तरफा परिपथ हैं। राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्रों के तहत 800 से भी अधिक माइक्रो-टर्मिनल जिलों और राज्यों की राजधानियों के बीच राष्ट्रव्यापी आँकड़ा संचार संपर्क उपलब्ध कराने का कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रीय ताप ऊर्जा निगम (एन.टी.पी.सी.), गैसे अथारिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (जी.ए.आई.एल.), नाभिकीय ऊर्जा निगम (एन.पी.सी.), भारतीय टेलीफोन उद्योग (आई.टी.आई.), तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ओ.एन.जी.सी.), नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड (एन.एफ.एल) तथा

कोल इंडिया लिमिटेड (सी.आई.एल) के उपग्रह-आधारित निजी तंत्र भी इनसेट के जरिए ही काम कर रहे हैं। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी.टी.आई.) ने भी इनसेट उपग्रह की प्रसारण सुविधाओं का उपयोग करके अपनी समाचार व सूचना सेवाओं को द्रुतगति व अधिक मात्रा में भेजने का एक कार्यक्रम लागू किया है। इनसेट-2सी, इनसेट-2ई तथा इनसेट-3बी की उपलब्धता के साथ, के यू-बैंड में व्यावसायिक संचार तथा संचल उपग्रह सेवाओं का परीक्षण किया जा रहा है।

इनसेट उपग्रहों में लगे बी.एच.आर.आर. उपकरण की सहायता से मौसम संबंधी आँकड़ों को एकत्र करने और उन्हें प्रसारित करने के साथ-साथ संलग्न प्लेटफार्म से सुदूर क्षेत्रों के मौसम संबंधी आँकड़े इकट्ठा करने से देश में मौसम की भविष्यवाणी के क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली है। उपग्रह पर आधारित स्थानीय विशेष आपदा चेतावनी प्रणाली के तहत समुद्री तूफान की आशंका वाले तटीय क्षेत्रों पर आपदा चेतावनी प्राप्त करने वाले 100 से अधिक रिसीवर लगाए गए हैं।

इनसेट का सबसे ज्यादा दूरदर्शन के तेजी से विस्तार में दिखाई दिया है। दूरदर्शन के 900 ट्रांसमीटर इनसेट से जुड़े हैं। इनसेट का दूरदर्शन तंत्र भारत की 83 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या तक अपने कार्यक्रम पहुँचाता है। इनसेट-2सी ने भारतीय दूरदर्शन को सीमा पर दूर-दूर तक पहुँचाया है। दक्षिण-पूर्व एशिया और मध्य एशिया के दर्शकों तक भी अब दूरदर्शन की पहुँच बनी है। राष्ट्रीय नेटवर्क पर विश्वविद्यालय स्तरीय शैक्षणिक कार्यक्रम दूरदर्शन द्वारा इनसेट की मदद से ही शुरू हो पाए हैं। कई राज्यों, जैसे - आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के कार्यक्रम भी दूरदर्शन पर दिखाए जा रहे हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण के विकास के लिए इनसेट का एक चैनल तो खास तौर पर रख छोड़ा गया है। मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में उपग्रह-आधारित विकासात्मक संचार और प्रशिक्षण क्षमता दिखाने के लिए दो साल की पायलट परियोजना शुरू की गई है।

प्रश्न 6. भारत की प्रतिरक्षा औद्योगिकरण एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
अथवा भारत में सैन्य औद्योगिक काम्पलेक्स पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर

भारत की प्रतिरक्षा औद्योगिकरण एवं उपलब्धियाँ

अच्छी तरह पहचान बनाने वाले औद्योगिक और तकनीकी उत्पादों की लंबी सूची है, जैसे - (क) कम्पोजिट पदार्थों से देश में ही बने दो सीटों वाले ट्रेनिंग देने वाले हंस वायुयान ने 11 मई 1988 को इतिहास रचा जब कि इसकी उड़ान उस दिन की तीन तकनीकी उपलब्धियों में से एक थी, राष्ट्रीय एयरोस्पेस प्रयोगशाला, बंगलौर द्वारा विकसित पेरिलस सुपरकंप्यूटर फ्लोसोलवर एम.के. 3, जो विश्व के सर्वोत्तम सुपरकंप्यूटरों में से एक है और जिसको इस्तेमाल मानसून गति-विद्या, रचना संबंधी यंत्र-विद्या प्रतिबिंबों के प्रसंस्करण और क्रिस्टल-विद्या में अत्यधिक तथा तेज गणनाओं के लिए किया जाता है।

परमाणु ऊर्जा

परमाणु ऊर्जा विभाग वृहद आधार वाली बहु-आयामी संस्था है, जो कि मूल तथा व्यावहारिक अनुसंधान प्रौद्योगिकी के विकास तथा उद्योग में इसके उपयोग के क्षेत्रों में कार्यरत है। इसकी मुख्य जिम्मेदारी देश में उपलब्ध यूरेनियम तथा थोरियम से सुरक्षित तथा कम लागत वाली परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करना है। यह रेडियो-आइसोटोपों के उत्पादन के लिए अनुसंधान रिएक्टर

बनाता है और स्वास्थ्य, कृषि तथा उद्योग में उपयोग के लिए आइसोटोप तथा विकिरण प्रौद्योगिकी के कार्यक्रम चलाता है। यह उच्च प्रौद्योगिकी के अनेक क्षेत्रों, जैसे - एक्सिलेरेटर्स, लेसर्स, सुपर-कंप्यूटर्स, उन्नत पदार्थों तथा यंत्रों में काम करता है और अन्य उपभोक्ताओं व उद्योगों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को बढ़ावा देता है। यह परमाणु ऊर्जा और उससे जुड़े विज्ञान के अग्रणी क्षेत्रों में मूल अनुसंधान को सहयोग देता है। यह विश्वविद्यालयों तथा शैक्षिक संस्थानों से तालमेल रखता है और ऐसी अनुसंधान व विकास परियोजनाओं को सहयोग देता है, जिनका विभाग के कार्यक्रमों से सम्बन्ध होता है। यह राष्ट्रीय सुरक्षा में योगदान करता है। अनुसंधान से सम्बन्धित उन्नत क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को यह प्रोत्साहित करता है।

आज परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत पाँच अनुसंधान केंद्र हैं - भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, (बी.ए.आर.सी.) मुंबई, इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र (आई.जी.सी.ए.आर.) कलपक्कम (तमिलनाडु), उन्नत प्रौद्योगिकी केन्द्र (सी.ए.टी.) इंदौर (मध्य प्रदेश), बरीएबल ऊर्जा साइकलोट्रॉन केंद्र, कलकत्ता और अन्वेषण अनुसंधान का परमाणु पदार्थ निदेशालय, हैदराबाद। तीन औद्योगिक संगठन हैं - गुरु जल बोर्ड-मुंबई, नाभिकीय ईंधन परिसर-हैदराबाद तथा विकिरण और आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड-मुंबई। चार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम हैं - भारतीय नाभिकीय ऊर्जा निगम लिमिटेड-मुंबई, भारत यूरेनियम लिमिटेड-जादुगुड़ा (बिहार), भारतीय रेयर अर्थ्स लिमिटेड-मुंबई, और भारत इलेक्ट्रॉनिक्स निगम लिमिटेड-हैदराबाद। चार सेवा संगठन हैं - क्रम तथा भंडारण निदेशालय-मुंबई, निर्माण संबन्धी, सेवाएँ तथा परिसंपदा प्रबंधन समूह, मुंबई, सामान्य सेवाएँ संगठन, कलपक्कम तथा परमाणु ऊर्जा शिक्षा सोसायटी-मुंबई।

विभाग इन सात स्वायत्त अनुसंधान संगठनों को भी वित्तीय सहायता देता है - टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, मुंबई, टाटा मेमोरियल सेंटर, मुंबई, साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स, कलकत्ता, इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स, भूवनेश्वर, मेहता रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ मैथेमेटिक्स एंड मैथेमेटिकल फिजिक्स, इलाहाबाद ऑफ मैथेमेटिकल साइंस, चेन्नई और इंस्टीट्यूट फार प्लाज्मा रिसर्च-अहमदाबाद। विभाग परमाणु ऊर्जा शिक्षा सोसायटी द्वारा प्रबंधित विभिन्न स्थानों के विद्यालयों और कालिजों के लिए भी वित्तीय सहायता देता है। विभाग के नाभिकीय विज्ञानों के अनुसंधान बोर्ड और उच्चतर गणित के राष्ट्रीय बोर्ड ने नाभिकीय व सम्बन्धित क्षेत्रों तथा गणित में क्रमशः अनुसंधान को आगे बढ़ाया है।

नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम

परमाणु ऊर्जा विभाग के नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के अंतर्गत प्रेशराइज्ड गुरुजल रिएक्टरों, फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों और थोरियम-आधारित रिएक्टरों का व्यावसायिक स्तर का निर्माण किया जाता है। इसके साथ-साथ, इन रिएक्टरों के संचालन तथा रख-रखाव अपशिष्ट प्रबंधन, सुरक्षा तथा पर्यावरण निगरानी के लिए प्रौद्योगिकी विकसित करना भी इस कार्यक्रम का हिस्सा है। आज भारत में 12 नाभिकीय ऊर्जा रिएक्टर व्यावसायिक स्तर पर काम कर रहे हैं। नए रिएक्टरों के डिजाइन में निरंतर सुधार होता रहा है तथा सुरक्षा, विश्वसनीयता तथा कम खर्च की विशेषताओं को जोड़ दिया गया है। पुराने संयंत्रों की चलते-चलते निरीक्षण, रख-रखाव तथा सुधार की प्रौद्योगिकी स्वयं ही सफलतापूर्वक विकसित की है।

हालाँकि भारतीय नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के पहले चरण के रिएक्टर के रूप में प्रेशराइज्ड गुरुजल रिएक्टरों पी.एच.डब्ल्यू.आर. का चयन किया गया था, नगर संचालन अनुभव

हासिल करने के लिए शुरू में तारापुर (महाराष्ट्र) में एक परमाणु ऊर्जा केंद्र लगाया गया। इस केंद्र में दो बायलिंग वाटर रिएक्टर थे, जिन्होंने 1969 में काम करना शुरू कर दिया। ये रिएक्टर अभी भी काम कर रहे हैं और अच्छी हालत में हैं।

अनुसंधान और विकास तथा देश में मौजूद औद्योगिक ढाँचे के सहयोग से 220 मेगावाट के पी.एच.डब्ल्यू. रिएक्टरों के डिजाइन में सुधार और मानकीकरण हो पाया। इस डिजाइन के आधार पर नरौरा (उत्तर प्रदेश) में दो रिएक्टर लगाए गए, जिन्होंने 1989 और 1991 में काम करना शुरू कर दिया। बाद में 1992 और 1995 में 220 मेगावाट वाले दो अन्य परमाणु ऊर्जा रिएक्टरों ने काकरापार (गुजरात) में काम करना शुरू कर दिया। इसके साथ ही, प्रेशराइज्ड गुरुजल रिएक्टरों को स्वदेशी प्रौद्योगिकी पूरी तरह से वाणिज्यिक तौर पर परिपक्व हो गई।

भारतीय नाभिकीय ऊर्जा निगम लिमिटेड कैगा (कर्नाटक) तथा रावत भाटा (राजस्थान) में उच्च प्रौद्योगिकी के दो-दो 220 मेगावाट वाले पी.एच.डब्ल्यू. रिएक्टर लगा रहा है। तारापुर में 500 मेगावाट के दो रिएक्टर लगा रहा है। इस साल दो बिजली रिएक्टरों-कैगा और रावतभाटा में एक-एक ने वाणिज्यिक तौर पर काम करना शुरू कर दिया है।

नाभिकीय प्रौद्योगिकी में भारत के बढ़ते अनुभव के फलस्वरूप, इसके नाभिकीय बिजली संयंत्रों के काम-काज में सुधार आया है। 1999-2000 के दौरान कुल मिलाकर 1,200 करोड़ इकाइयों से भी ज्यादा का बिजली उत्पादन हुआ। संयंत्रों की औसत क्षमता बढ़कर 80 प्रतिशत के स्तर तक पहुँच गई, जब कि 1995-96 में यह दर मात्र 60 प्रतिशत थी। एन.पी.सी.आई.एल. ने न केवल घाटे का दामन छोड़कर लाभ की ओर मुख मोड़ा, बल्कि 1999-2000 वित्त वर्ष के दौरान सरकार को 61.48 करोड़ रुपये के लाभांश का भुगतान भी किया।

दो हजार मेगावाट कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा परियोजना और 440 मेगावाट कैगा परमाणु ऊर्जा परियोजना-3 व 4 एन.पी.सी.आई.एल. की नई परियोजनाएँ हैं। भारत आज परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के डिजाइन, निर्माण, संचालन और रख-रखाव में अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर चुका है। यह सभी सम्बन्धित उपकरणों तथा पुर्जों का निर्माण कर सकता है तथा जरूरी परमाणु ईंधन और विशेष पदार्थों का उत्पादन कर सकता है।

फास्ट ब्रीडर रिएक्टर

फास्ट ब्रीडर रिएक्टर कार्यक्रम की संरचना तथा बनने वाले परीक्षण रिएक्टर के बारे में अध्ययन 60 के दशक में शुरू हुआ। फास्ट ब्रीडर टेस्ट रिएक्टर (एफ.बी.टी.आर.) का निर्माण 1972 में शुरू हुआ और 1984 में पूरा हुआ। एफ.बी.टी. रिएक्टर के बाद प्रोटोटाइप फास्टब्रीडर के निर्माण का फैसला लिया गया। इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र में विस्तृत डिजाइन कार्य किया गया। 500 मेगावाट के प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर का डिजाइन कर लिया गया है और भारतीय उद्योग के साथ मिलकर प्रौद्योगिकी विकास का काम चल रहा है। पी.एफ.बी. रिएक्टर के निर्माण का काम नौवीं योजना के अंतिम वर्ष में शुरू किया जाना है।

थोरियम इस्तेमाल

भारतीय नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के तीसरे चरण में बिजली उत्पादन के लिए थोरियम के इस्तेमाल का प्रस्ताव है और इस दिशा में अनुसंधान प्रयास शुरू कर दिए गए हैं। जब थोरियम पर विकिरण पड़ता है तो यह नाभिकीय ईंधन यूरेनियम-233 में परिवर्तित हो जाता है। यूरेनियम-

233 (नाभिकीय ईंधन) के उत्पादन की प्रौद्योगिकी साबित की जा चुकी है, साथ ही यूरेनियम-233 से विकिरण थोरियम को अलग करने की सुविधा भी स्थापित की जा चुकी है। काकरापार परमाणु ऊर्जा केंद्र में थोरियम ईंधन के बंडलों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल फलक्स प्लैटनिंग के लिए किया जा चुका है। न्यूट्रोन स्रोत रिएक्टर कामिनी, जो कि विकिरित थोरियम से हासिल है, अपनी 30 किलोवाट की पूरी विद्युत क्षमता के स्तर पर काम कर रहा है। इस रिएक्टर का इस्तेमाल न्यूट्रोन रेडियोग्राफी, न्यूट्रान एक्टिवेशन विश्लेषण तथा अन्य कामों के लिए किया जाता है। ट्रांबे में थोरियम पर आधारित उन्नत गुरुजल रिएक्टर के डिजाइन और इंजीनियरिंग विकास का काम चल रहा है। इस रिएक्टर का उद्देश्य भारत में उपलब्ध थोरियम के विशाल भंडारों का इस्तेमाल करना है और इसमें अनेक सुरक्षा कदम शामिल किए गए हैं।

नाभिकीय ईंधन क्रमिका

नाभिकीय ईंधन क्रमिका से संबंधित सभी संयंत्रों/सुविधाओं (रिएक्टरों के अलावा) के डिजाइन और संचालन की पूरी क्षमता भारत ने हासिल कर ली है। इस क्रमिका में खनन, अयस्क की सांद्रता बढ़ाना, ईंधन का संविचरण, गुरुजल का उत्पादन, तथा अपशिष्ट का प्रबंधन तथा पुनर्संस्करण शामिल है।

परमाणु ऊर्जा विभाग की जो संस्थाएँ इस काम में जुड़ी हैं, वे हैं - हैदराबाद का परमाणु खनिज अनुसंधान और अन्वेषण निदेशालय, जादुगुड़ा (बिहार) का भारीतय यूरेनियम निगम लिमिटेड, मुंबई का भारतीय रेयर अर्थ्स लिमिटेड, मुंबई का गुरुजल बोर्ड, हैदराबाद का नाभिकीय ईंधन परिसर, बी.ए.आर.सी. तथा आई.जी.सी.ए.आर.।

प्रश्न 7. भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संसाधन सूचना की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संसाधन सूचना

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग नियमित रूप से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र से जुड़े मानवीय वित्तीय संसाधनों के विषय में सूचना उपलब्ध कराता है। भारत में अनुसंधान व विकास संस्थानों को नवीनतम निर्देशिका में केन्द्र, राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय व निजी उद्योगों की अनुसंधान व विकास इकाइयों, मानव्यता-प्राप्त विश्वविद्यालयों, सहित विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों और निजी क्षेत्र के वैज्ञानिक तथा औद्योगिक संगठनों के कुल मिलकर 2,900 नाम, पते तथा अन्य ब्यौरों को शामिल किया गया है।

(1) अंतर्राष्ट्रीय सहयोग - अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी सहयोग तीन स्तरों पर होता है, अर्थात् विकसित तथा विकासशील देशों के साथ द्विपक्षीय सहयोग, क्षेत्रीय सहयोग, जैसे - सार्क, आसियान तथा वी.आई.एम.एस.टी. देशों के साथ, और नैम विज्ञान व प्रौद्योगिकी केंद्र, कोस्टेड, यूनेस्को आदि के साथ बहुपक्षीय सहयोग। भारत का फ्रांस, जापान, रूस आदि सहित विश्व के 53 देशों के साथ द्विपक्षीय विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी सहयोग है। विकसित तथा विकासशील देशों के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी सहयोग के चल रहे कार्यक्रमों के अलावा, पुर्तगाल और मलेशिया के साथ नए अंतरसरकारी समझौते हुए हैं।

भारत-यूरोपीय संघ सूचना तथा प्रौद्योगिकी पहल के बारे में बातचीत करने के लिए ब्रसेल्स में संयुक्त बैठक हुई। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन क्षेत्रों के बारे में बातचीत हुई, जिनमें बा

दोनों पक्षों की दिलचस्पी थी। भारत और यूरोपीय संघ के बीच संभावित समझौते पर भी चर्चा हुई। यूरोपीय संघ के 1998-2000 के पाँचवें फ्रेमवर्क कार्यक्रम के अंतर्गत भारत की हिस्सेदारी जारी रखने की भी बातचीत हुई। इस कार्यक्रम के तहत विकासशील देशों में यूरोपीय संघ की भागीदारी रही।

(2) **स्वायत्त वैज्ञानिक संस्थान** - मूल तथा व्यावहारिक विज्ञान के अग्रणी क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग वैज्ञानिक अनुसंधान में लगे निम्नलिखित 13 स्वायत्त संस्थानों को अनुदान देता है - (1) आगारकर अनुसंधान संस्थान, पुणे-जीव-विज्ञान के मूल तथा व्यावहारिक पहलुओं में अनुसंधान, (2) श्री चित्रा तिरुनल चिकित्सा विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, तिरुअनंतपुरम-जैव-चिकित्सा इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी का विकास करना, उन्नत चिकित्सा विशेषताओं में मरीजों की देख-रेख में उच्च मानक प्रदर्शित करना तथा उपलब्ध कराना और इन क्षेत्रों में उच्च कोटि के स्नातकोत्तर प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित करना, (3) इंडियन एसोसिएशन फार कल्टिवेशन ऑफ साइंस, कलकत्ता-ठोस अवस्था भौतिकी, पदार्थ विज्ञान, सैद्धान्तिक भौतिकी, स्पैक्ट्रोस्कोपी, ऊर्जा अनुसंधान, जैव-रसायन सहित रसायन विज्ञान, पोलिमेर विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन, (4) इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टापिकल मीटिरियोलॉजी, पुणे - अयनवृत्तों के बीच मौसम के क्षेत्र में अनुसंधान के राष्ट्रीय केंद्र के रूप में काम करता है, (5) जवाहरलाल नेहरू उन्नत वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र, बंगलौर-रसायन शास्त्र, पदार्थों की भौतिकी, द्रव्य के गति-विज्ञान की गणना, भू-गति, संकुचित पदार्थ सिद्धान्त, पशुओं के व्यवहार, आनुवंशिकी आदि अग्रणी क्षेत्रों में अनुसंधान, (6) रमन अनुसंधान संस्थान, बंगलौर - मूलभूत विज्ञानों में अनुसंधान, अनुसंधान के मुख्य क्षेत्र है - खगोलशास्त्र, खगोल-भौतिकी तथा तरल क्रिस्टल आदि, (7) इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ जिओमैग्नेटिज्म, मुंबई - पृथ्वी के गर्भ में चल रही भौतिक प्रक्रियाओं तथा सूर्य और पृथ्वी के समीप तथा ग्रहों के बीच के अंतरिक्ष का अध्ययन, (8) वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जिओलॉजी, देहरादून - हिमालय क्षेत्र के भू-आयामों को समझने के लिए बायो-स्ट्रैटोग्राफी, पेट्रोलॉजी तथा भू-रासायनिकी, सेडी-मेंटोलॉजी, टेक्टोनिक्स और पर्यावरण भूगर्भ का अध्ययन, और (9) पाउडर मैटलर्जी और नए पदार्थों का अंतर्राष्ट्रीय उन्नत अनुसंधान केंद्र, हैदराबाद-बेहतर परिणामों वाले पदार्थों और प्रक्रियाओं का विकास।

विभाग विज्ञान और प्रौद्योगिकी संवर्द्धन में लगी निम्नलिखित शैक्षिक और व्यावसायिक संस्थाओं को भी वित्तीय और प्रशासकीय सहायता उपलब्ध कराता है, जिसके इंजीनियर और वैज्ञानिक इस काम में जुड़े हैं : (1) भारतीय विज्ञान अकादमी, बंगलौर, (2) भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, (3) भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ, कलकत्ता, (4) राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, इलाहाबाद, और (5) भारतीय राष्ट्रीय इंजीनियरी अकादमी, नई दिल्ली।

(3) **तकनीकी आत्मनिर्भरता के लिए कार्यक्रम** - तकनीकी आत्मनिर्भरता के लिए कार्यक्रम के तहत वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान विभाग ने औद्योगिक इकाइयों की लगभग 100 अनुसंधान तथा विकास परियोजनाओं को आंशिक आर्थिक सहयोग दिया है। ये परियोजनाएँ अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों, जैसे धातु-विज्ञान, विद्युत, इलेक्ट्रॉनिक्स, यंत्र विज्ञान, यांत्रिक इंजीनियरिंग, गद्दी उठाने की तथा औद्योगिकी मशीनरी, रसायन तथा विस्फोटकों के उत्पादों तथा प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं।

(4) **प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को प्रभावी बनाने की योजना** - इस योजना के अंतर्गत विदेशी सहयोग राष्ट्रीय रजिस्टर, प्रौद्योगिकी का व्यापार और हस्तांतरण परामर्श सेवाओं को बढ़ाने और सहयोग देने के कार्यक्रम शामिल है। विदेश सहयोग की राष्ट्रीय रजिस्टर योजना, देश में आवश्यक तकनीक को हासिल करने और बढ़ावा देने के लिए काम करती है। प्रौद्योगिकी व्यापार और हस्तांतरण योजना का उद्देश्य प्रौद्योगिकियों, परियोजनाओं और सेवाओं के निर्यात की गतिविधियों को सहयोग देना तथा बढ़ाना है। 1999-2000 के दौरान की गतिविधियाँ निम्नलिखित रहीं : नई दिल्ली के भारत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मेला, 1999 में प्रौद्योगिकी निर्यात पैवेलियन लगाया गया, कोलंबो में इंडियो टेक-2000 में अनुसंधान व विकास प्रयोगशालाओं में हिस्सा लेने के लिए सहयोग, और सी.आई.आई. में 'प्रौद्योगिकी निर्यात संवर्द्धन कोष्ठ' का गठन, आदि।

परामर्श सेवाओं को बढ़ाने और सहयोग देने की योजना का उद्देश्य मुख्यतः घरेलू और निर्यात बाजार के लिए परामर्श क्षमताओं को सुदृढ़ बनाना है। 1999-2000 के दौरान इसके मुख्य कार्यों में कानपुर में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए सेवा केंद्र का डिजाइन और इंजीनियरिंग तथा भीलवाड़ा में वस्त्र उद्योग के लिए परामर्श केंद्र रहे।

(5) **विज्ञान और प्रौद्योगिकी की राष्ट्रीय सूचना प्रणाली** - इस प्रणाली का काम विज्ञान और तकनीकी कार्यक्रमों के विकास और सहयोग की दिशा में सूचना प्रणाली को एक् नेटवर्क में पिरोना है। मौजूदा केंद्रों, प्रणालियों और सेवाओं को सक्षम बनाने के प्रयासों पर जो दिया जा रहा है, ताकि वे सूचना की राष्ट्रव्यापी उपयोगिता में आवश्यकता की पूर्ति कर सकें।

(6) **राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम** - विज्ञान तथा अनुसंधान प्रयोगशालाओं में प्रौद्योगिकी को उद्योगों में हस्तांतरित करने की प्रमुख संस्था राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम है। इसकी गतिविधियाँ सूचना औद्योगिक तकनीकों से जुड़ी हैं - रसायनों से लेकर धातु-विज्ञान तक यंत्रिक इंजीनियरिंग, विद्युत इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रॉनिक्स और जैव-प्राद्योगिकी आदि। निगम 1999-2000 में जिन प्रमुख प्रौद्योगिकी का लाइसेंस करवाया वे हैं : बैकरी मार्गरीन, ग्लूको वाइयो-सेंसर, नेनो-आकार के स्थिर जिरकानिया उत्पादन, वेंडेयिम पेराआक्साइड, स्पीरुलीन शैवाल गैम्बीयर से कल्चर बनाना, मूंगफली के आकार को बिना बदले वसा निकालना, छाल रोग में इलाज के लिए 777 तेल, पेय जल में सूक्ष्म कीटाणुओं को जाँचने का यंत्र तथा जैविक रूप से लुप्त होने वाला प्लास्टिक।

(7) **केन्द्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड** - केन्द्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (सी.ई.एल. ने सौर फोटोवोल्टिक्स, फेराइट्स और पीजो-सिरेमिक्स के क्षेत्र में देश में नया कार्य किया। आज इसे विश्व में सिंगल क्रिस्टल लाइन सिलिकान सोलर सेल्स का सर्वाधिक उत्पादन करने लिए जाना जाता है। निम्नलिखित तीन मुख्य क्षेत्रों में इसकी गतिविधियाँ केंद्रित हैं - (क) सो फोटोवोल्टेइक सेल्स, माइक्रोल्स और विभिन्न उपयोगों के लिए प्रणालियाँ, (ख) चुनिंदा इलेक्ट्रॉनि प्रणालियाँ-रेलवे संकेत और सुरक्षा उपकरण, तेल पाइप-लाइनों के लिए कैथोडिक सुर उपकरण, स्विचिंग प्रणाली और वी-सैट, तथा (ग) चुनिंदा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण-प्रोफेशन (सॉफ्ट) फेराइट्स इलेक्ट्रॉनिक सिरेमिक्स, पीजो इलेक्ट्रिक एलीमेंट्स और माइक्रोवेव कंपोनेंट्स।

(8) **वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद** - सन 1942 में स्थापित वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद एक स्वायत्त सोसायटी है। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक विकास

क्षेत्र में इसका विस्तृत घोषणा-पत्र है, जिसके अंतर्गत यह परिषद वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान को बढ़ाया, मार्गदर्शन और समन्वय प्रदान करती है, प्रयोगशालाओं को धन प्रदान करती है और अनुसंधान के नतीजों का औद्योगिक विकास में इस्तेमाल करती है। परिषद की 40 प्रयोगशालाएँ और 80 क्षेत्रीय/विस्तार केंद्र देशभर में फैले हुए हैं। इन प्रयोगशालाओं में अनेक विषयों पर अनुसंधान और विकास कार्य होता है माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स से धातु-विज्ञान, औषधि सम्बन्धी पौधों से औद्योगिक मशीनरी, रसायनों अणु जीवन-विज्ञान तथा शीश, सिरेमिक्स तथा चमड़े जैसे जिनसों पर। कुछ क्षेत्रों में परिषद इतनी सुदृढ़ तथा आगे है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका सिक्का माना जाता है। ये क्षेत्र हैं - एयरोस्पेस अभियांत्रिकी, दवाइयाँ तथा औषधि-विज्ञान, जीवन-विज्ञान तथा जैव-प्रौद्योगिकी, रसायन (उत्प्रेरक तथा पोलिमेर), पेट्रोलियम (शोधन तथा पेट्रो-रसायन), पदार्थ (कंपोजिट्स), चमड़ा (प्रसंस्करण, रसायन तथा उत्पादन डिजाइन), भू-भौतिकी तथा रेडियो-भौतिकी। परिषद आज विश्व में सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली औद्योगिक अनुसंधान प्रयोगशालाओं की सबसे बड़ी कड़ियों में से एक है।

परिषद के परिवार में 22,000 सदस्य हैं, जिसमें से 5,300 वैज्ञानिक हैं और उनमें से 60 प्रतिशत के पास पी.एच.डी. अथवा एम.टेक, की डिग्री है। परिषद का सालाना बजट लगभग 800 करोड़ रुपये हैं, जिसमें से 75 प्रतिशत सरकार देती है तथा बाकी परिषद अनुबंध पर प्राप्त अनुसंधान व विकास कार्यों से, अपनी प्रौद्योगिकी के लाइसेंस जारी कर, तकनीकी व परामर्श सेवाएँ देकर अर्जित करती है। परिषद ने विश्व स्तर पर ज्ञान के क्षेत्र में व्यावसायिकी शुरूआत की है और अनुबंध पर मिले अनुसंधान और विकास कार्य से लगभग 30 लाख अमरीकी डालर अर्जित किए हैं। परिषद द्वारा विकसित तकनीक के आधार पर 1999-2000 में अनुमानतः 4,500 करोड़ रुपये का औद्योगिकी उत्पादन हुआ। परिषद ने इतने सालों में 4,000 तकनीकें विकसित की जिनमें से 80 प्रतिशत पूरी तरह से लघु उद्योग में इस्तेमाल के उपयुक्त हैं। परिषद ने भारत में 340 और विदेशों में 200 पेटेंट प्रार्थना-पत्र दायर किए। परिषद ने देश में बौद्धिक संपदा आंदोलन का नेतृत्व किया है और हल्दी पर अमरीकी पेटेंट का विरोध कर नया रास्ता दिखाया। अब तक परिषद ने 50,000 अनुसंधान फैलोशिप/एसोसिएटशिप प्रदान किए हैं और 10,000 उच्च योग्यता वाले होनहार वैज्ञानिकों को सहायता दी है। लगभग 450 सेवा-निवृत्त वैज्ञानिकों को भी वित्तीय सहायता प्रदान की गई है ताकि विज्ञान की उन्नति में उनकी क्षमता और अनुभव का फायदा उठाया जा सके। 1998-99 में परिषद ने अनूठी योजना 'विज्ञान में नेतृत्व के लिए युवाओं का सी.एल.आई.आर. कार्यक्रम' चालू किया, जिसके अंतर्गत उच्च विद्यालय परीक्षा (10वीं कक्षा) के सर्वोत्तम 30 विद्यार्थियों को परिषद के खर्च पर निकटतम परिषद की प्रयोगशाला/संस्थान में आमंत्रित किया जाता है।

परिषद 'भारतीय उद्योग के लिए प्रौद्योगिकी तथा प्रौद्योगिकी सेवा के क्षेत्र में विश्व स्तर का स्रोत है। तकनीकी सेवाओं और सहयोग में संसाधन सर्वेक्षण, समस्या की पहचान, परीक्षण, अंशांकन प्रमाणीकरण तथा लोगों को प्रशिक्षित करना शामिल है। परिषद ने वैज्ञानिक अनुसंधान के नतीजों तथा वैज्ञानिक सोच व नए तरीके से काम करने की संस्कृति को देश भर में फैलाने में अहम भूमिका अदा की है। विज्ञान के प्रकाशन और संचार के लिए आप से दो संस्थान खोले गए हैं - राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्था तथा भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक अभिलेखीकरण केन्द्र। दोनों ही नई दिल्ली में स्थित हैं।

प्रश्न 8. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।

उत्तर

-आधुनिक युग में युद्ध की आवश्यकतायें असीमित हो गई हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान और आविष्कार के कारण युद्ध यन्त्रीकृत और जटिल होता जा रहा है। आर्थिक विकास और प्रतिरक्षा के मामले में आत्म-निर्भर होने के लिए राष्ट्र का औद्योगिक विकास आवश्यक है। जो देश रक्षा सम्बन्धी उपकरणों का उत्पादन करने में समर्थ नहीं रहेगा उसकी स्वतन्त्रता विदेशियों की दया पर निर्भर करेगी। शीत-युद्ध के विषाक्त वातावरण में किसी विदेशी राष्ट्र पर भरोसा करना आत्म-हत्या के अतिरिक्त कुछ नहीं है। स्वतन्त्रता के पहले भारत ब्रिटिश सरकार का एक उपनिवेश था। भारत की रक्षा का दायित्व ब्रिटिश सरकार पर था किन्तु वह रक्षा सम्बन्धी जो नीति बनाती थी उसमें ब्रिटेन के हितों को सर्वोपरि महत्व दिया जाता था, न कि भारत को। ब्रिटिश सरकार ने प्रतिरक्षा सम्बन्धी वस्तुओं में भारत को आत्म-निर्भर बनाने का कभी प्रयास नहीं किया क्योंकि ऐसा करना वह अपने हितों के प्रतिकूल समझती थी। यही कारण था कि जब प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ा तो उस समय भारतीय सेना के पास जो हथियार थे वे पड़ोसी और अत्यन्त अविकसित देश अफगानिस्तान की सेना से भी घटिया और पुराने थे। युद्ध में भारतीय सैनिकों की वफादारी और वीरता को देखकर पहली बार सरकार ने अनुभव किया कि यदि भारतीय सेना को अच्छे आधुनिक हथियार दिये जाये तो वह ब्रिटेन के साम्राज्य की रक्षा में लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अतः भारतीय सेना को आधुनिक बनाने का प्रयास शुरू हुआ। किन्तु अंग्रेजों ने भारत में कोई रक्षा उद्योग नहीं खोला वरन् ब्रिटेन से हथियार आते थे तब भारतीय सेना उनका प्रयोग करती थी। अंग्रेज यह नहीं चाहते थे कि भारतीय सेना ब्रिटिश सेना से शक्तिशाली बने। 15 अगस्त, 1947 को जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब विरासत के रूप में अंग्रेजों ने जो सेना हमको दी वह बहुत घटिया किस्म के हथियारों वाली सेना थी। देश दो (भारत, पाक) टुकड़ों में विभाजित हो गया। अतः सेना और हथियारों का भी बँटवारा करना पड़ा। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद भारत की लम्बी स्थलीय और जलीय सीमा की सुरक्षा का भार भारतीय सेना पर आ पड़ा। तभी कश्मीर की समस्या लेकर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया। यद्यपि भारत की ही तरह पाकिस्तान की सेना भी निम्न और पुराने हथियारों से सुसज्जित थी, अतः उन्हें पराजित करने में हमारी सेना सफल हो गई। दुर्भाग्य से हमारे राजनीतिक कर्णधार आदर्शवाद और मिथ्यामोह के कारण भारत को रक्षा सम्बन्धी मामले में आत्म-निर्भर बनाने की दिशा में उदासीन रहे और ऐसा इसलिये हुआ कि उन्हें विश्वास था कि पाकिस्तान के अलावा हमारा कोई शत्रु नहीं है और पाकिस्तान भारत से कमजोर है। किन्तु 1962 में जब चीन ने आक्रमण कर दिया तो भारत को मुँह की खानी पड़ी, क्योंकि चीन की तुलना में हमारे जवानों के पास हथियार निम्न कोटि के थे। चाहे वे कितनी ही बहादुरी से क्यों न लड़ते, पराजय निश्चित थी। अतः भारत सरकार को पहली बार अनुभव हुआ कि यदि भारत की अपनी खण्डता और स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है तो रक्षा सम्बन्धी उत्पादन में आत्म निर्भर होना ही पड़ेगा। फलस्वरूप आत्म-निर्भरता की प्रक्रिया शुरू हुई।

प्रथम रक्षा पंचवर्षीय योजना - 1964 में रक्षा-मन्त्रालय ने प्रतिरक्षा सम्बन्धी मामले में आत्म-निर्भर बनने के लिये एक पंचवर्षीय योजना तैयार की जिसकी कुछ मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं - (1) स्थल सेना की संख्या बढ़ाकर 8,25,000 की जाये। एक पर्वतीय कम्प्लेक्स स्थापित की जाये जिससे सैनिक पर्वतीय जलवायु में रहने, लड़ने में अभ्यस्त बन सकें। (2)

सीमावर्ती क्षेत्रों में पर्याप्त सड़कों का निर्माण किया जाये। (3) वायु सेना में 45 परसेण्ट बढ़ाये जाये। पुराने वायुयानों के स्थान पर आधुनिक लड़ाकू, बमवर्षक तथा विभिन्न प्रकार के विमान दिये जाये। (4) नौसेना की संख्या बढ़ाई जाये। पुराने युद्धपोतों के स्थान पर नये युद्धपोत दिये जाये और आत्म-निर्भरता के लिये देश में युद्धपोत निर्माण के उद्योग खोलें जायें। (5) रक्षा उत्पादन को तेजी से बढ़ाया जाये जिससे सेना हथियारों एवं साज-सामान के मामले में आत्म-निर्भर बन सके। (6) सेना के प्रशिक्षण में सुधार किया जाये। (7) सेना के हथियारों का न केवल आधुनिकीकरण किया जाये वरन् मानकीकरण (किया जाये। (8) यातायात एवं संचार साधनों का विस्तार किया जाये।

उपरोक्त योजना के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ और भारत में क्रमशः अनेक रक्षा उद्योगों की स्थापना हुई। वर्तमान भारत में जितने रक्षा उद्योग हैं उनमें कुछ महत्वपूर्ण रक्षा उद्योगों का विवरण इस प्रकार है -

(1) **स्थलसेना सम्बन्धी रक्षा उद्योग** - स्थलसेना के लिये आवश्यक सामानों के उत्पादन में कुछ विशेष प्रकार के उपकरणों को छोड़कर भारत लगभग आत्मनिर्भर हो गया है। हथियार, गोला-बारूद, परिवहन गाड़ियाँ, संचार के साधन, वस्त्र तथा अन्य उपकरणों का उत्पादन सन्तोषजनक है। भारत में वर्तमान समय में लगभग छोटी-बड़ी तीन दर्जन आर्डिनेंस फैक्टरियाँ स्थापित हो चुकी हैं। भारत सरकार ने एक आर्डिनेंस महानिदेशक की नियुक्ति की है जो इन कारखानों के उत्पादन में रख-रखाव के लिये उत्तरदायी है। आर्डिनेंस कारखानों में मुरादनगर का एलेक्टर निर्माण कारखाना, किरकी का गोलियों और विमान के इंजन का कारखाना, ईछापुर का रायफल बन्दूक तथा छोटे-छोटे उपकरणों का कारखाना, कानपुर का कार्बाइन और ब्रेनगन बनाने का कारखाना विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त हेवी व्हीकिल फक्ट्री आवडी जिसमें विजयन्त टैंक का निर्माण होता है। इनमें टैंक के लिये आवश्यक 80% पुर्जों का उत्पादन किया जाता है। सैनिकों के खाद्य सामग्री बनाने वाला टूडला का कारखाना, जबलपुर का सैनिक गाड़ियों के बनाने का कारखाना आदि प्रसिद्ध हैं। इन उद्योगों में बन्दूक, अर्द्धस्वचालित रायफल, ब्रेनगन, हल्की मशीनगन, कारबाइन्स, हथगोले, 105 मिमी. की मैदानी तोपें, 25 पाउन्डर तोप, पर्वतीय तोप, (Standardization) -70 राडार नियन्त्रित विमानभेदी तोप, स्वचालित माध्यमिक तोप, मार्टर आदि का उत्पादन किया जा रहा है।

(2) **वायुसेना सम्बन्धी रक्षा उद्योग** - वायुसेना के लिये विमान तथा अन्य उपकरण के निर्माण में भारत ने काफी प्रगति की है। अक्टूबर, 1964 में वायुसेना के उद्योगों का एकीकरण "हिन्दुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड" के नाम से किया गया जिसमें हिन्दुस्तान एअर क्राफ्ट लि. एरोनॉटिक इण्डिया लि. तथा एअरक्राफ्ट मैनुफैक्चरिंग डिपो का विलय किया गया। देश भर में लगभग कई दर्जन उद्योग बंगलोर, कानपुर, नासिक आदि स्थानों पर इस सार्वजनिक संस्थान के अधीन काम कर रहे हैं। इन कारखानों में बनने वाले विमानों भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तान के आयातित विमान मिराज और सैबरजेट जैसे विश्व प्रसिद्ध विमानों को मार गिराने वाला 'नेट' और 'हन्टर' जैसे छोटे किन्तु अचूक निशाने वाले विमानों का निर्माण किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त H.F.24 (मारुत) लड़ाकू विमान, प्रशिक्षण विमान, 'किरन', सुपरसोनिक विमान 'Much II' मालवाही विमान HS-748 तोपखाने के लिये प्रक्षेपण करने वाले (AOP), हेलीकॉप्टर, Alouette S.A.315 Type हेलीकॉप्टर, रूसी सहयोग से निर्मित Mig-21 तथा Mig-21 आदि विमानों का निर्माण किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के इंजन जैसे (orpheus-

701) (orpheus-703) Dart आदि का भी उत्पादन किया जा रहा है। निकट भविष्य में यह उद्योग हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने आत्म-निर्भर हो जायेगा।

(3) नौसेना सम्बन्धी उद्योग - ब्रिटिश काल में सर्वप्रथम 1941 में व्यक्तिगत क्षेत्र में 'सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' की स्थापना के साथ आधुनिक भारतीय जलयान निर्माण उद्योग का इतिहास प्रारम्भ होता है। 1951 में इस कम्पनी का राष्ट्रीयकरण हुआ तथा मार्च 1953 को 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि.', विशाखापट्टम- नाम पड़ा। यह उद्योग लगभग 50 से भी अधिक व्यापारिक जहाजों का निर्माण कर चुका है। इस कम्पनी ने 1959 में आई. एन. एस. 'दशक' नामक प्रथम युद्धपोत बनाकर भारतीय नौसेना को दिया। यहाँ पनडुब्बियों के निर्माण का कार्य भी शुरू हो रहा है। भारत की दूसरी कम्पनी मझगाँव गादीयार्ड (Mazagoan Dockyard) है। यह ब्रिटिश सहयोग से रक्षा मन्त्रालय द्वारा संचालित किया जाता है। इस उद्योग में सर्वप्रथम 'फ्रिगेट' टाइप का युद्धपोत 'आई. एन. एस. नीलगिरि' का निर्माण हुआ और मई 1972 को भारतीय नौसेना को सौंपा गया। किन्तु ब्रिटिश सहयोग पर निर्भरता उचित नहीं है एवं भारतीयकरण आवश्यक है। भारत की तीसरी कम्पनी 'कोचीन शिपयार्ड कोचीन' है। इस कम्पनी में जापान से भी तकनीकी सहयोग लिया जा रहा है। यहाँ मालवाही बड़े पोत तथा टैंकर बनाने की सुविधा है। इसके अतिरिक्त 'गोआ शिपयार्ड लि.' तथा 'गार्डन रीच वर्कशाप लि.' आदि उद्योग भी भारत की आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयत्नशील हैं।

(4) आण्विक उद्योग - भारतवर्ष ने परमाणु शक्ति के उत्पादन में काफी प्रगति की है। वर्तमान समय में भारत में कई परमाणु केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। भारत अन्तरिक्ष विज्ञान में काफी प्रगति कर चुका है। आर्यभट्ट, रोहिणी, भास्कर आदि अन्तरिक्ष यान सफलतापूर्वक छोड़ा जा चुका है। निकट भविष्य में हम अपना अन्तरिक्ष यान अपने ही राकेट से छोड़ने में समर्थ हो जायेंगे। भारत के परमाणु केन्द्रों में महाराष्ट्र के ट्राम्बे और तारापुर केन्द्र, राजस्थान का राणाप्रताप सागर केन्द्र मद्रास का कालापक्कम केन्द्र विशेष उल्लेखनीय है। भारत अपनी परमाणु-शक्ति को विद्युत उत्पादन तथा शान्तिकालीन निर्माण के लिये प्रयोग कर रहा है। इस उद्योग में अभी हम आत्मनिर्भर नहीं हैं। अमेरिका, कनाडा तथा सोवियत संघ से तकनीकी सहयोग ईंधन, यूरेनियम एवं भारी जल प्राप्त करते हैं किन्तु ये राष्ट्र कभी-कभी दबाव की राजनीति करते हैं और सहयोग बन्द कर देने की धमकी देते हैं। हमें इस दिशा में आत्मनिर्भरता आवश्यक है।

(5) सैनिक परिवहन उद्योग - भारत सरकार ने सेना के परिवहन की आवश्यकता को पूरा करने के लिये सर्वप्रथम 1958 में सैनिक परिवहन उद्योग का संचालन अपने हाथों में लिया और सार्वजनिक क्षेत्र में कई कारखाने स्थापित हुए जिनमें जबलपुर आर्डिनेंस फैक्ट्री विशेष उल्लेखनीय है। इसकी शक्तिशाली निशान ट्रक तथा निशान जीप मशहूर हैं। इसके अतिरिक्त भारत सरकार का 'रक्षा अनुसंधान एवं विकास परिषद' के तत्वाधान में गस्ती गाड़ियाँ, पर्वतीय गाड़ियाँ, आर्मी कोर सिगनल्स के लिये संचार गाड़ियाँ, मेडिकल कोर की गाड़ियाँ, डाक एवं स्टेशन वैगन आदि का उत्पादन किया जा रहा है।

(6) सैनिक संचार उद्योग - आधुनिक गतिशील, विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए सैनिकों की सूचनायें तथा आदेश आदि प्रसारित करने के लिये विकसित संचार साधनों का होना आवश्यक है। भारत इस दिशा में भी पीछे नहीं है। सार्वजनिक प्रतिष्ठान "भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड" इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। भारत बेतार के तार सम्बन्धी उपकरणों जैसे रेडियों, ट्रांसमीटर, रिसेवर, माइक्रोवेब तथा राडार आदि बनाने में भी आत्मनिर्भर हो गया है।

(7) रेल उद्योग - भारत सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में चलने वाले विभिन्न उद्योगों में रेल उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। इसमें लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त है। भारत रेल यातायात के लिये आवश्यक सभी साधनों जैसे भाप का इंजन, डीजल इंजन, विद्युत इंजन, पटरियाँ, वैगन, यात्री डिब्बे तथा कोच आदि बनाने में न केवल आत्मनिर्भर हुआ है वरन् विदेशों को निर्यात करने में भी समर्थ हुआ है। भारत के रेल कारखानों में 'चित्रंजन लोकोमोटिव वर्क्स' जहाँ भाप के इंजन तथा विद्युत संचालित डी. सी. तथा ए. सी. दोनों प्रकार के इंजन बनते हैं, दूसरा 'डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी' जहाँ डीजल इंजन का निर्माण किया जाता है, विशेष महत्वपूर्ण हैं। मडुवाडीह (वाराणसी) का यह कारखाना तंजानिया जैसे देशों को इंजन निर्यात कर रहा है। इसके अतिरिक्त "भारत अर्थमूवर्स लिमिटेड" टाटा इंजीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कम्पनी, जमशेदपुर, 'इन्टीग्रल कोच फैक्ट्री पेराम्बूर' आदि कारखानें विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपसंहार - आर्थिक पिछड़ापन, वित्तीय कठिनाई एवं तकनीकी ज्ञान की कमी आदि अनेक समस्याओं के बावजूद भी भारत प्रतिरक्षा सम्बन्धी विभिन्न सामानों के उत्पादन में जिस द्रुतगति से आत्मनिर्भर हुआ है, वह निश्चय ही एक महान् उपलब्धि है। कुछ लोगो का यह तर्क है कि भारत पिछड़ा देश है, लोगों का रहन-सहन काफी निम्न है, भारत के लिये रक्षा उद्योगों पर अधिक धन व्यय करना उचित नहीं, न्यायसंगत नहीं है। वास्तव में किसी देश की प्रतिरक्षा तैयारी उसके आर्थिक विकास में बाधक नहीं होती। यदि प्रतिरक्षा तैयारी तथा आर्थिक विकास में उचित सामंजस्य स्थापित किया जाये तो प्रतिरक्षा तैयारी आर्थिक विकास में बाधक न होकर सहायक सिद्ध होती है। यदि भारत रक्षा उत्पादन में आत्मनिर्भर हो जाये तो विदेशों से युद्ध सम्बन्धी सामानों के आयात में जो भारी विदेशी मुद्रा देनी पड़ती है वह बच जायेगी। यदि भारत रक्षा उत्पादन का निर्यात करने योग्य हो जाये तो वह भारी विदेशी मुद्रा कभी भी सकेगा। आज दुनिया के अविकसित देश जो अधिकांश एशिया और अफ्रीका में स्थित हैं वे बड़े राष्ट्रों से युद्ध के सामानों को खरीदते हैं किन्तु बड़े राष्ट्र एक तरफ तो उनसे पैसा ऐंठते हैं और दूसरी तरफ दबाव की राजनीति खेलते हैं। यदि भारत उन छोटे-छोटे देशों की रक्षा-आवश्यकता पूरी करने में समर्थ हो जाये तो निःसन्देह वे राष्ट्र भारत को प्राथमिकता देंगे। क्योंकि भारत उनसे अनेक दृष्टिकोणों से अधिक निकट है तथा दबाव की राजनीति के स्थान पर शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व पर विश्वास रखता है। भारत को एक बड़ा लाभ यह होगा कि रक्षा उद्योगों में आत्मनिर्भर हो जाने पर विश्व रंगमंच पर एक महत्वपूर्ण स्थान पा सकेगा तथा अपनी बातों को दुनिया के सामने दृढ़तापूर्वक रख सकेगा और लोग उस पर ध्यान भी देंगे। आये दिन आक्रमण होते हैं वह कम हो जायेंगे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी जो औद्योगिक नीति बनाये उसमें सामान्य उद्योगों में उचित सामंजस्य स्थापित करें। सामान्य उद्योगों का नियोजन एवं स्वरूप इस प्रकार हो कि उद्योग काल में जनता की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करें तथा संकट के समय सेना की आवश्यकता की पूर्ति करें। उदाहरण के लिये जो उद्योग कार, जीप और अद्यक बनाते हैं; यदि आवश्यकता हुई तो वे टैंक और स्वचालित तोपें बनाने लगे, जो उद्योग कपड़ा बनाते हैं, वे सैनिकों के लिये वस्त्र, तम्बू तथा अन्य सामान बनाने लगे, जो उद्योग नागरिक उड्डयन सम्बन्धी यान बनाते हैं, वे बमवर्षक तथा लड़ाकू विमान बनाने लगे, कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भारत भी बड़े राष्ट्रों की तरह हथियारों की दौड़ में भाग ले किन्तु राष्ट्रीय हित का यह तकाजा है कि हम रक्षा उत्पादन में किसी विदेशी राष्ट्र के मुहताज न रहें।

प्रश्न 9. भारतीय प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के उद्भव एवं विकास का वर्णन कीजिए। (अथवा मार्गदर्शित प्रक्षेपास्त्रों और वर्मों के विकास का वायु युद्ध कर्म पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना कीजिए।)

उत्तर - समन्वित निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम परियोजना की स्थापना हमारी रक्षा सेनाओं के लिए उच्च कोटि के प्रक्षेपास्त्रों के सफल परीक्षण का आधार बना और अब तक सतह से सतह में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों "पृथ्वी" सतह से हवा में मार करने वाले कम दूरी के प्रक्षेपास्त्र "त्रिशूल" सतह से हवा में मार करने वाले मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्र "आकाश" मध्यम उन्नत किस्म के टैंक भेदी प्रक्षेपास्त्र "नाग" एवं प्रौद्योगिकी की अनुपम सिस्टम उन्नत फैब्रीकेशन सुविधाओं इनशियल गाइडेन्स टेक्नालाजी तथा सिस्टम डिजाइन में अपनी मजबूत नींव रख चुकी थी। समन्वित निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम परियोजना को कारगर रूप प्रदान करने के लिए तत्कालीन रक्षामंत्री आर. वेंकटरमन के वैज्ञानिक सलाहकार डा. वी. एस. अरूणाचलम ने एक "प्रक्षेपास्त्र अध्ययन दल" का गठन किया, जिसमें रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला हैदराबाद के निदेशक डा. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के अतिरिक्त तीनों सेनाओं तथा रक्षा उत्पादन विभाग से सदस्य नामित किये गये थे। इस अध्ययन दल ने अपनी आख्या चार माह में ही तैयार करके रक्षामंत्री, तीनों सेनाध्यक्षों एवं सम्बन्धित सचिवों को प्रस्तुत कर दी। विचार विमर्श के उपरान्त पाँच प्रकार के प्रक्षेपास्त्रों को जरूरत के अनुसार विकसित करने का निर्णय लिया गया और पाँचों परियोजनाओं को साथ-साथ चलाने की अनुमति चार माह में ले ली गई जिसमें तीन मुख्य विशेषताएँ थीं -

1. प्रक्षेपास्त्र समकालीन हों और स्टेट आफ आर्ट टेक्नालाजी पर आधारित हों।
2. विकास और उत्पादन साथ-साथ ही अर्थात् सीमित मात्रा में उत्पादन किया जाए।
3. प्रयोक्ता सेनाओं का इस प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम में निरन्तर सहयोग हो।

इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए निर्देशित प्रक्षेपास्त्र बोर्ड नामक संस्था प्रमुख थी। रक्षा अनुसंधान और विकास सचिव इसके अध्यक्ष थे। रक्षा उत्पादन व रक्षासचिव, सुरक्षा सेनाओं के वित्त सलाहकार, तीनों सेनाओं के सह अध्यक्ष प्रमुख सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के अध्यक्ष, हिन्दुस्तान एयरोनाटिक्स के अध्यक्ष और भारत डायनामिक्स लिमिटेड के प्रबन्ध निदेशक इस संस्था के सदस्य बनाये गये। शीर्ष संस्था के अगले स्तर "कार्यक्रम प्रबन्ध बोर्ड" की अध्यक्षता निर्देशित प्रक्षेपास्त्र बोर्ड के सचिव को सौंपी गयी।

कार्यक्रम प्रबन्ध बोर्ड के सदस्यों में सभी पाँच प्रक्षेपास्त्र परियोजनाओं के परियोजना निदेशक, इस कार्यक्रम में सहयोग प्रदान करने वाली प्रयोगशालाओं के निदेशक, नियोजन तथा संसाधन प्रबन्ध के निदेशक, राकेट व प्रक्षेपास्त्र निदेशक तथा कार्यक्रम के अतिरिक्त वित्तीय सलाहकार, तीनों सेनाओं के वरिष्ठ अधिकारी एवं उत्पादन प्रबन्ध समिति के सदस्यों को रखा गया। इस प्रकार इस परियोजना में अनुसंधान और विकास संगठन की प्रयोगशालाओं, अंतरिक्ष संगठनों, वैज्ञानिकों तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद सार्वजनिक और गैर सरकारी प्रतिष्ठानों, शैक्षणिक केंद्रों जैसे देश भर के 80 से अधिक अलग-अलग संस्थानों के प्रतिनिधि विचार करते थे ताकि सुरक्षा सेनाओं को उन्नत किस्म की प्रक्षेपास्त्र प्रणालियाँ मिल सकें। इसय अनोखी विधि को अपनाने के फलस्वरूप यह परियोजना देरी करने वाली प्रक्रियाओं, बाधाओं तथा सामान्य प्रशासनिक त्रुटियों को लांघती हुई तेजी से उद्देश्य की ओर बढ़ सकी जिसके परिणाम जल्दी ही

सामने आ गये। कार्यक्रम को स्वीकृति मिलने के छः वर्ष के अन्दर भारत ने अपने पाँच प्रक्षेपास्त्रों पृथ्वी, त्रिशूल, नाग, अग्नि और आकाश में से तीन का सफल प्रक्षेपण कर लिया है शेष दो विकास की अन्तिम प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

पृथ्वी

22 फरवरी 1988 का दिन भारत के लिए शस्त्र निर्माण कार्यक्रम में ऐतिहासिक बन गया, क्योंकि भारत ने उस दिन आन्ध्र प्रदेश के श्री हरिकोटा राकेट परीक्षण केन्द्र से जमीन से जमीन पर मार करने वाले पृथ्वी प्रक्षेपास्त्र का सफल परीक्षण किया। रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार पृथ्वी अपने किस्म के उन अत्याधुनिक प्रक्षेपास्त्रों में से एक है जिनका उपयोग अमेरिका व रूस कर रहे हैं। 8.5 मीटर लम्बे इस प्रक्षेपास्त्र के 1000 किलोग्राम की विस्फोटक सामग्री में शत्रु सेना में तबाही फैलाने की पर्याप्त क्षमता है शत्रु सेना को तितर-बितर करने, दुश्मन के हवाई अड्डों एवं आयुधागारों को नेस्तनाबूद करने तथा विस्फोटक सामग्री के भण्डारों को नष्ट करने के लिए यह सबसे घातक प्रक्षेपास्त्र है।

40 से 150 किलोमीटर की दूरी तक मार करने वाले इस एस. एस. 150 प्रक्षेपास्त्र पर यदि 500 किलोग्राम का एक हल्का या युद्ध शीर्ष रख दिया जाये तो इसकी मारक दूरी 250 किलोमीटर तक बढ़ाई जा सकती है। यह 1000 किलोग्राम तक के भार को वहन कर सकता है। अब तक पृथ्वी के नौ परीक्षण हो चुके हैं जिनमें एक को छोड़कर सभी परीक्षण अपने मापदण्डों पर खरे उतरे हैं। पृथ्वी का सातवाँ परीक्षण 5 मई 91, आठवाँ परीक्षण 18 अगस्त 92 और नौवाँ परीक्षण 29 अगस्त 92 को बालासोर से लगभग 12 किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी के चाँदीपुर तट पर बनाये गये अन्तरिम परीक्षण केन्द्र से किया गया। पृथ्वी प्रक्षेपास्त्र शीघ्र ही सेना में शामिल कर लिया जायेगा। सेना के लिए इसका निर्माण भारत डायनामिक्स लिमिटेड करेगी।

त्रिशूल

त्रिशूल प्रक्षेपास्त्र का सफल परीक्षण हो चुका है। धरती से आकाश में मार करने वाला यह कम दूरी का प्रक्षेपास्त्र है। 30-40 बार के सफल परीक्षणों के बाद अब इसे सेना को सौंपे जाने की पूरी तैयारी है और इसका उत्पादन शीघ्र ही किये जाने की योजना तेजी पर है। आशा है इसी वर्ष के अन्त तक यह सेना को प्राप्त हो जायेगा।

नाग

यह तीसरी पीढ़ी का टैंकभेदी प्रक्षेपास्त्र है। 29 नवम्बर 1990 को इसका सफल परीक्षण किया जा चुका है। नाग प्रक्षेपास्त्र 4 किलोमीटर की दूरी से ही टैंक को नेस्तनाबूद कर सकता है। भविष्य में सभी टैंकों को मात देने हेतु इसकी मुख्य सक्रियात्मक आवश्यकताएँ दागों और भूल जाओ तथा उच्च आक्रमक क्षमताएँ हैं। इसे स्वपंथी वाहनों और हेलीकाप्टरों पर लगाया जा सकता है। नाग प्रक्षेपास्त्र वाहक का स्वपंथी वाहन के साथ इस प्रकार संरूपण किया गया है कि इस प्रक्षेपास्त्र को छोड़ने के लिए तैयार की दशा में लांचर पर ले जाता है। इसके अन्दर अतिरिक्त प्रक्षेपास्त्रों का भण्डारण होता है जिसे गाड़ी में ही लांचर पर रखा जाता है। लक्ष्य अधिग्रहण प्रणाली में तापीय दृष्टि सी. सी. डी. दिन दर्शा और लेजर रेंजबोधक सम्मिलित होते हैं।

दर्शा प्रणाली की सहायता से लक्ष्यों का पता लगाया जाता है तथा एक स्वचालित प्रक्रिया के जरिये आपरेटरों द्वारा प्रक्षेपास्त्र अन्वेषकों को सौंप दिया जाता है। जब आपरेटर को

इस तथ्य का श्रव्य दृश्य संकेत मिल जाता है तो वह प्रक्षेपास्त्र को दाग देता है। प्रक्षेपास्त्र स्वतः परम तीव्र आक्रमण से प्रक्षेप पथ पर होते हुये लक्ष्य की ओर बढ़ता है। इस प्रकार दागो और भूल जाओ क्षमता प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपण के तुरन्त बाद प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपक और कार्मिकों को उस लक्ष्य से मुक्त कर देती है।

फरवरी 90 में स्थित प्रक्षेपक से एयर फ्रेम, प्रणोदन, विद्युत आपूर्ति एवं टेली मेट्री प्रणालियों का उड़ान परीक्षण हो चुका है। नवम्बर 90 में आटो पायलट, सेंसर पैकेज और एक्चुएशन सिस्टम के लिए नियन्त्रित उड़ानों के साथ-साथ ट्रेजेक्ट्री स्कीम का भी परीक्षण किया गया। अब आई. आई. आर. अन्वेषक की सफल उड़ान परीक्षण के बाद यह 1994 तक सेना में प्रयोग हेतु लाया जायेगा।

अग्नि

चाँदीपुर के अन्तरिम परीक्षण केन्द्र से 22 मई 1989 को प्रातः सवा सातम बजे सतह से सतह पर मध्यम दूरी तक मार करने वाले संहारक प्रक्षेपास्त्र "अग्नि" की पहली उड़ान की गयी जो अपनी सभी कसौटियों पर सही उतरी। अग्नि के सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारत को अन्तर्राष्ट्रीय यशस्विता मिली और भारत प्रक्षेपास्त्र बनाने वाले देशों की सूची में विश्व का ऐसा छठा देश बन गया जिसके पास मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्र विकसित करने और छोड़ने की क्षमता विद्यमान है। इससे पूर्व यह तकनीक अमरीका, रूस, चीन, फ्रांस और ब्रिटेन के पास मौजूद थी।

प्रक्षेपास्त्र अग्नि का अभिकल्पन निर्माण, कलपुर्जे और प्रणालियाँ सभी स्वदेशी हैं जो रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की हैदराबाद प्रयोगशाला द्वारा निर्मित किया गया है। अग्नि प्रणाली के दो भाग हैं। अग्नि प्रणाली के प्रथम चरण में ठोस ईंधन का प्रयोग किया गया है और दूसरे पुनः प्रवेश चरण में तरल ईंधन प्रयोग में लाया गया है। इसका प्रभाव चरण एस. एस. वी.-3 का अनुरूप है और दूसरा चरण पृथ्वी प्रक्षेपास्त्र का संवर्धित स्वरूप है। 21 मीटर लम्बी अग्नि प्रणाली का कुल भार 16 टन है और एक टन आयुध ले जा सकता है। अग्नि की मारक दूरी 1500 से 2500 किलोमीटर तक है। इसकी मारक क्षमता के बारे में डा. अब्दुल कलाम का कहना है कि यह लम्बी दूरी का प्रक्षेपास्त्र है। साधारण ईंधन भार के साथ 2500 किलोमीटर तक जा सकता है और भारी ईंधन भार के साथ यह 1500 किलोमीटर तक प्रहार कर सकता है।

अग्नि का दूसरी परीक्षण उड़ान 29 मई, 1992 को प्रातः सवा आठ बजे चाँदीपुर अन्तरिम परीक्षण केन्द्र से हुई जो 60 प्रतिशत ही सफल मानी जा सकती है क्योंकि उड़ान के दौरान निर्धारित पथ से यह प्रक्षेपास्त्र विमुख हो गया था। उड़ान के दौरान घटनाएँ किस क्रम में असम्बद्ध हुई अभी तक ज्ञात नहीं हो सकता है। पथ विमुखता सम्बन्धी दोष का विश्लेषण हो रहा है।

अग्नि के प्रक्षेपण पर जहाँ भारत के लिए हर्ष की बात है वहीं इस पर अमरीका ने दुःख व्यक्त करते हुए कहा कि अग्नि के प्रक्षेपण के भारत के फैसले पर हमें खेद है इससे दक्षिण एशिया में शान्ति के प्रयासों को धक्का पहुँचेगा। इस पर भारत ने स्पष्ट किया है कि अग्नि अस्त्र प्रणाली नहीं है बल्कि प्रक्षेपास्त्र प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्कृष्टता अर्जित करने का प्रयास है।

आकाश

14 अगस्त, 1990 को लम्बी दूरी के सहित से हवा में मार करने वाले आकाश प्रक्षेपास्त्र का सफल परीक्षण किया गया। इसका विकास हैदराबाद के रक्षा अनुसंधान और विकास

प्रयोगशाला ने किया है। रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार इसके कुछ परीक्षणों बाद इसे सेना में शामिल किया जा सकेगा। आकाश प्रक्षेपास्त्र 27 किलोमीटर की ऊँचाई तक आकाश में उड़ने वाली किसी वस्तु विमान व प्रक्षेपास्त्र को आकाश में ही नष्ट करने की क्षमता रखता है। प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के निदेशक डा. अब्दुल कलाम के अनुसार आकाश प्रक्षेपास्त्र अमरीकी पैट्रियाट प्रक्षेपास्त्रों की मूल अवधारणा पर विकसित किया गया है और यह पैट्रियाट से कुछ मामलों में बेहतर सिद्ध होगा।

हाईपरप्लेन

प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के अतिरिक्त हमारे वैज्ञानिकों ने आकाश से आकाश में मार करने वाली उन्नत प्रक्षेपास्त्र प्रणाली अस्त्र की योजना पर कार्य करना शुरू कर दिया है। यह नयी प्रणाली हाईपरप्लेन किस्म की है जिसका उद्देश्य कम से कम लागत पर अधिकतम भार आकाश में भेजने का है। नई प्रणाली में मिश्रित स्पेश लाचर और एयरोप्लेन विशिष्टताएँ हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके तीन रूप विकसित हो रहे हैं। हाईपरप्लेन हवा लेने वाले इंजन की सहायता से सामान्य हवाई धावन पथ से उड़ान भर सकेगा और फिर इसकी गति अन्तरिक्ष के अनुसार बढ़ाई जा सकती है। 22 से 28 किलोमीटर की उड़ान में यह वायुमण्डल से हवा लेगा और उसमें रखी गयी टंकियों में तरल आक्सीजन एकत्र होगी जिसे अन्त में गति बढ़ाते समय क्रायोजेनिक राकेट इंजन में इस्तेमाल किया जा सकेगा। हाईपरप्लेन एक बहुत बड़ा एवं बहुराष्ट्रीय कार्यक्रम है जिसे पूरा होने में 12-15 वर्षों का समय लग सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ हमारे पड़ोसी देशों के पास तैयार अवस्था में प्रक्षेपास्त्र मौजूद हैं वहीं भारत अपने प्रक्षेपास्त्रों को आने वाले दिनों में तैयार कर सकेगा। अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि भारत अपने प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम में तेजी लाये और प्रक्षेपास्त्रों का उत्पादन शीघ्र प्रारम्भ करे। हालात को देखते हुए आने वाले दिनों में सैन्य प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास होगा और भावी कमान्डरों के हाथों में अत्यन्त परिष्कृत एवं महँगे आयुध होंगे जैसे - सामरिक प्रक्षेपास्त्र सूक्ष्म निदेशित शस्त्रास्त्र प्रणाली, दूरस्थ नियन्त्रित चालकरहित विमान और सशस्त्र हेलीकाप्टर आदि। भावी सेनाओं में प्रक्षेपास्त्र बटालियन होंगी जिनके पास कोर स्तर पर सामरिक प्रक्षेपास्त्र होंगे जो विभिन्न डिविजनों के साथ प्रक्षेपास्त्र कम्पनियों के रूप में रह सकेगी।

प्रश्न 10. निम्न पर टिप्पणी लिखिए

- (1) भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास
- (2) मानव संसाधन विकास बनाम प्रौद्योगिक विकास

उत्तर - (1) भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास - 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा का दायित्व भारतीय सरकार और जनता के कन्धों पर आ गया। यद्यपि उस समय भारत की आर्थिक स्थिति कमजोर थी, किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहर लाल नेहरू ने एक मजबूत वैज्ञानिक नींव रखी। भारत की प्रतिरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सर्वप्रथम 1958 ई. में "रक्षा अनुसंधान विकास संगठन" (D.R.D.O.) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य रक्षा सम्बन्धी अनुसंधान करके प्रतिरक्षा मामलों में भारत को आत्मनिर्भर बनाना है। सन् 1980 में पृथम से "रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग" (R and D.) की स्थापना की गई। जिसके द्वारा इस संगठन एवं इसकी लगभग पचास प्रयोगशालाओं व प्रतिष्ठानों का प्रशासन चलाया जाता है। वैज्ञानिक प्रतिरक्षा अनुसंधान की

रूपरेखा एवं विकास के उद्देश्य से स्थापित किया गया यह संस्थान भारत का सर्वोच्च रक्षा संस्थान है। यह संस्थान रक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक सलाहकार जो रक्षा अनुसंधान व विकास विभाग का सचिव भी होता, के नेतृत्व में कार्य करता है।

इस संगठन के प्रमुख उद्देश्य हैं - (1) भारतीय सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नये-नये हथियारों की डिजाइन करना एवं उनका विकास करना। (2) स्थल, नभ एवं नौ सेनाओं में वैज्ञानिक परामर्श देकर चुस्त एवं बेहतर बनाना।

3. आक्रामणात्मक शस्त्रों एवं सुरक्षात्मक उपकरणों के उत्पादन में राष्ट्र को सहयोग देकर आत्मनिर्भर बनाना।

4. रक्षा अनुसंधान तथा विकास के प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख करना।

5. तीनों सेनाओं की आवश्यकताओं को निर्धारित करना।

6. तैयार रक्षा उपकरणों का मूल्यांकन करना।

7. संक्रियात्मक समस्याओं को सुलझाने में सेनाओं को तकनीकी सहायता प्रदान करना।

8. राकेट, मिसाइल, इन्जीनियरिंग, इलेक्ट्रॉनिक्स, एयरोनाटिक्स, नेवल टैक्नालोजी संरचना, एवं विभिन्न जलवायु व भूमि के बनावट के अनुसार गाड़ियों के निर्माण आदि की वैज्ञानिक रूप रेखा तैयार करना।

इस संगठन के नेतृत्व में लगभग 650 दीर्घ संस्थान और 50 प्रयोगशालायें कार्यरत हैं जो विज्ञान तथा तकनीकी से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर सृजनात्मक कार्यों में संलग्न हैं। आज इसमें दस हजार से अधिक सैनिक व असैनिक विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। लगभग 35,000 से अधिक अराजपत्रत वैज्ञानिक कर्मचारी इसमें सम्मिलित हैं। इन वैज्ञानिक का ही परिणाम है कि आज भारत नाभिकीय एवं अन्तरिक्ष के क्षेत्र में विश्व का छठवाँ थान प्राप्त कर सका है।

(2) मानव संसाधन विकास बनाम प्रौद्योगिकी विकास :

मानव संसाधन विकास - सन् 2008 तक 5,000 करोड़ डालर के कंप्यूटर साफ्टवेयर और आई.टी. समर्थित सेवाओं के निर्यात को कर पाने के लिए 20 लाख आई.टी. व्यवसायियों की आवश्यकता है। देश में आज सभी विषयों में मिलाकर दो लाख स्नातक हर साल निकल रहे हैं। मानव संसाधन विकास को बढ़ावा देने के लिए अनेक कदम उठाए जा रहे हैं : राष्ट्रीय साफ्टवेयर क्षमता संवर्धन कार्यक्रम, साफ्टवेयर प्रौद्योगिकी का राष्ट्रीय केंद्र, इलेक्ट्रॉनिक्स डिजाइन और प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना, बी.एल.एल.आई. डिजाइन के क्षेत्र में प्रशिक्षित लोगों को तैयार करने का विशेष कार्यक्रम, सूचना प्रौद्योगिकी के लिए उच्चतर मानव संसाधन विकास, आई.टी. क्षेत्र के लिए आई.टी. समर्थित दूरस्थ शिक्षा, डी.ओ.ई.ए.सी.सी. योजना और परियोजना इंपैक्ट/इंडस्ट्री ओरिएंटेड मेनपावार विध एप्रोप्रिएट कोपीटेंस एंड ट्रेनिंग।

साफ्टवेयर क्षमता बढ़ोत्तरी - भारतीय साफ्टवेयर उद्योग की गुणवत्ता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाने के लिए मंत्रालय ने अमरीका की कारनेगे मैलन विश्वविद्यालय के साथ मिलकर साफ्ट केप नामक साफ्टवेयर क्षमता बढ़ोत्तरी कार्यक्रम चलाया है। शोधन संयंत्र का स्वचालन, जलसंभार विकास के लिए आई.टी. प्रयास, कम लागत के मल्टी-मीडिया विषय-सूची तैयार करना और भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास आदि कार्य किए गए हैं।

उपयोगिता विकास - इलेक्ट्रॉनिक्स और आई.टी. के उपयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से औद्योगिक इलेक्ट्रॉनिक्स संवर्द्धन कार्यक्रम, परिवहन और विद्युत वितरण कार्यक्रम, ऊर्जा/विद्युत क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक्स कार्यक्रम, इलेक्ट्रॉनिक्स और स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम, बुद्धिमान निर्माण प्रणाली के विकास कार्यक्रम और मंत्रालय के ग्रामीण/सामाजिक/कृषि/जल क्षेत्रों के लिए इलेक्ट्रॉनिक्स कार्यक्रम के अंतर्गत काफी उपलब्धियाँ हासिल की गई हैं।

प्रौद्योगिकी विकास - सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने देश में प्रौद्योगिकी विकास को उच्च प्राथमिकता दी है। इसके फलस्वरूप उच्च श्रेणी का समांतर सुपर-कंप्यूटर (परम), वातावरण के गतिज अध्ययन के लिए अति-विशाल रॉडार, रॉडार और संचार-सहित आंकड़ों के लिए प्रवर्धन और सुरक्षा प्रणाली, ग्लोबल पोजिशनिंग प्रणाली के पुर्जे, कैंसर के इलाज के लिए लिनियर एक्सीलरेटर, सेमी-कंडक्टर उद्योग के लिए यंत्र जैसे - मोलीक्चलर बीम एपीटेक्सी, उंगली के निशानों का विश्लेषण और अपराधी को ढूँढ़ निकालने की प्रणाली, 200 एम, डब्ल्यू/200के.वी.के एच.बी.डी.सी. लाइन को चालू करना, स्वचालित ड्रिप सिंचाई प्रणाली, कृषि यंत्र प्रणालियाँ, जल

प्रश्न 11. भारतीय रक्षा में विज्ञान और सैनिक शक्ति का वर्णन कीजिए।

उत्तर

विज्ञान और सैनिक शक्ति

रक्षा और सैनिक शक्ति के सन्दर्भ में विज्ञान और तकनीकी की भूमिका, क्षेत्र और महत्व की आधुनिक पृष्ठभूमि फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद जन्मी "जल सेना" और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति तक जाती है, जब पेरिस में भारी संख्या में आयुधों और तोपों के निर्माण के लिए कारखाने खोले गये और जनता द्वारा लड़े जाने वाले आधुनिक युद्धों का प्रारम्भ हुआ। औद्योगिक क्रान्ति ने सैनिक शक्ति के विकास में अद्वितीय योगदान किया। परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सैनिकों की भारी संख्या के विरुद्ध तोपों, राइफलों, मशीनगनों और बन्दूकों ने श्रेष्ठता स्थापित कर ली तथा मित्र राष्ट्रों और जर्मनी के बीच पश्चिमी मोर्चे पर गत्यावरोध उत्पन्न हुआ। इस गत्यावरोध को तोड़ने के लिए कवच युक्त (टैंको) और यन्त्रीकृत सेना का निर्माण हुआ। कवचित और यन्त्रीकृत युद्धकला के जन्म के साथ ही विज्ञान, तकनीकी, उद्योग और वित्त की चतुरंगी प्रकृति का उदय हुआ, जो सैनिक और असैनिक दोनों क्षेत्रों के अनिवार्य बन गयी। इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान युद्ध एवं रक्षा तथा सुरक्षा के ढाँचे का एक अभिन्न अंग बन गया। सोवियत संघ के संस्थापक लेनिन ने प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद कहा था कि "वर्तमान युग में विजय प्राप्त करने के लिए उत्साह ही काफी नहीं है इसके लिए तकनीकी श्रेष्ठता अधिक महत्वपूर्ण है।" विश्व के सभी देश अधिक से अधिक गतिशील, अधिक से अधिक विध्वंसक तथा अधिक से अधिक सटीक लक्ष्य भेदन की क्षमता वाले आयुधों और यन्त्रों तथा सहायक प्रणालियों के उत्पादन में वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधानों का उपयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान न केवल आक्रमण बल्कि रक्षा, सुरक्षा एवं विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि यह सत्य है कि आधुनिक युद्ध के सामरिक आयामों का सीधा सम्बन्ध सेना तथा सैनिक शक्ति से है, परन्तु युद्ध के सम्भारतन्त्रीय आयामों अर्थात् युद्ध के संचालन में वैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनुसंधानों की भूमिका का बहुत बड़ा महत्व है। सैन्य इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सैनिक शक्ति के मूल सैद्धान्तिक सामरिक आयामों से जैसे नेतृत्व, प्रशिक्षण, मनोबल और सिद्धान्तों आदि की युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, परन्तु

अब इसमें कोई सन्देह नहीं की तकनीकी दृष्टि से परिष्कृत और उच्च क्षमता के आयुधों की अनुपस्थिति में युद्ध क्षेत्र में विजय नहीं प्राप्त की जा सकती है। कुछ सामरिक विशेषज्ञों का ऐसा मानना है कि वियतनाम, अफगानिस्तान में उच्च तकनीकी से सुसज्जित महाशक्तियाँ पराजित हुई। 1991 में खाड़ी युद्ध में उच्च तकनीकी ने निर्विवाद रूप से अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी, जब बहुराष्ट्रीय सेनाओं की उच्च और परिष्कृत तकनीकी से निर्मित बमों, तोपों, प्रक्षेपास्त्रों और युद्धक विमानों के सम्मुख अनुभवी इराकी सेना को प्रतिरोध करने का भी अवसर नहीं प्राप्त हो सका और युद्ध के प्रथम दस दिनों में ही इराकी वायु क्षेत्र पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया गया। इस उच्च तकनीकी युद्ध कला ने सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया। खाड़ी के दूसरे युद्ध (2003) तथा अफगानिस्तान युद्ध (2001) में एक बार पुनः उच्च तकनीकी के आयुधों और सैनिक साजो सामान से सुसज्जित पश्चिमी देशों की सेनाओं ने निर्णायक श्रेष्ठता और सफलता प्राप्त की। आज भी कुछ सैन्य विशेषज्ञ यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अफगानिस्तान और इराक पर उच्च तकनीकी के बावजूद भी नियंत्रण स्थापित करने में अनेक समस्याये उत्पन्न हो रही हैं। इसका एक प्रमुख आयाम यह है कि उच्च तकनीकी के साथ भारी सैनिक शक्ति (जनशक्ति) की भी आवश्यकता पड़ती है। जिसकी कुछ कमी पश्चिमी देशों के पास है। परन्तु ऐसा तर्क उचित नहीं है क्योंकि यह स्थिति युद्ध में सफलता प्राप्त के उपरान्त शान्ति स्थापना के आयामों से जुड़ी है।

हिंसा और युद्ध, सभ्यता, समाज और राजनीति का ही एक अंग होता है, जिसके लिए मानव स्वभाव से लेकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सैनिक कारकों को उत्तरदायी माना जाता है। इस प्रकार युद्ध अनेक कारणों से उत्पन्न होने वाली एक घटना है और यह आदिकाल से अनन्त काल तक होती रहेगी और जब तक युद्ध रहेंगे, तब तक नवीन एवं परिष्कृत तकनीकी पर आधारित आयुधों का निर्माण होता रहेगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विज्ञान युद्ध की आवश्यक आवश्यकता बन गया है। इस प्रकार विज्ञान और तकनीकी तथा युद्ध एक दूसरे के पूरक बन गये। वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं सिद्धान्तों के व्यावहारिक उपयोग की प्रक्रिया को तकनीकी कहते हैं और तकनीकी के क्षेत्र में परिवर्तन का श्रेय यूरोपीय वैज्ञानिकों एवं औद्योगिक क्रान्ति को जाता है। जब उत्पादन में सतत नवीन तकनीकी का प्रयोग करने से उत्पादन मात्रा तथा गुणवत्ता में श्रेष्ठता आने लगी। इसके परिणामस्वरूप तकनीकी की प्रकृति में निरन्तर परिवर्तन होने लगे, जिससे समय के साथ तकनीकी बड़ी तीव्र गति से पुरानी तथा अनुपयोगी हो जाती है। बीसवीं शताब्दी में तकनीकी के क्षेत्र में परिवर्तन की गति और तेज हो गयी तथा कोई भी तकनीकी एक ही दशक में अपनी उपयोगिता खो देती थी। 21वीं शताब्दी में यह परिवर्तन की दर और तेज हो गयी और तथा आयुधों और सैनिक साजो-सामान की गुणवत्ता तथा क्षमता में कुछ ही वर्षों में परिवर्तन आ जाता है। जैसे - परम्परागत बम वर्षक विमान की बैक-फायर, स्टेल्थ तथा एफ-35 जैसे युद्धक विमानों से कोई तुलना नहीं की जा सकती है।

तकनीकी परिवर्तन से किसी भी राष्ट्र की सैनिक क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव को पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -

1. प्रहारक या विध्वंसक क्षमता पर प्रभाव।
2. रक्षात्मक क्षमता पर प्रभाव।
3. गति पर प्रभाव।

4. संचार की गति तथा प्रसार पर प्रभाव।

5. आसूचना पर प्रभाव।

1. वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप बन्दूकों, राइफलों, मशीनगनों और तोपों, बमवर्षक विमानों, प्रक्षेपास्त्रों तथा परमाणु आयुधों की सहायता से सेना की प्रहारक शक्ति में कल्पनातीत वृद्धि हुई और आज इतनी विध्वंसक शक्ति सैनिक साधनों के रूप में निर्मित और संचित की जा सकी है कि किसी राष्ट्र या सेना तो क्या सम्पूर्ण पृथ्वी को कई बार नष्ट किया जा सकता है। रसायन विज्ञान, धातु विज्ञान तथा इन्जीनियरिंग के योग से सेना की प्रहारक शक्ति और विध्वंसक क्षमता में अद्वितीय वृद्धि हुई है।

2. सेना की विध्वंसक शक्ति में वृद्धि ने रक्षा के उपायों के विकास की आवश्यकता को उजागर किया। जिससे कवचित सेना और कवचित युद्ध कला का विकास हुआ। रक्षा और सुरक्षा के कवच की खोज में गोपनीयता, छिपाव तथा फैलाव आदि उपायों का सहारा लिया जाने लगा, जिससे आयुधों को शत्रु की निगरानी, निरीक्षण और प्रहारक शक्ति से बचाया जा सके। खोतेजिक आयामों के सन्दर्भ में आज प्रहारक शक्ति ही रक्षा की गारन्टी और पर्यायवाची हो गयी है। अतः दो राष्ट्र एक दूसरे पर आक्रमण इसलिए नहीं करेंगे क्योंकि दोनों एक दूसरे की प्रहारक शक्ति से डरते हैं। रक्षा की इसी खोतेजी को प्रतिरोधकता या भयादोहन कहते हैं।

3. सैनिक शक्ति के खोतेजिक, सामरिक तथा सम्भारतन्त्रीय आयामों में गति की भूमिका बहुत ही निर्णायक होती है। दूसरे शब्दों में गति के बिना युद्ध का संचालन सम्भव ही नहीं है। गति ही वह तत्व है, जो विज्ञान को युद्ध, रक्षा और सुरक्षा से जोड़ता है। इंजन (वाष्प और तेल दोनों) तथा परिवहन के साधनों एवं मार्गों के विकास से सेना की गतिशीलता में भारी वृद्धि हुई। प्रथम विश्व युद्ध तक जहाँ रेलों ने विभिन्न सैनिक गतिविधियों को व्यापक रूप से प्रभावित किया तो वहीं दूसरी ओर प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के काल के बीच वायु शक्ति ने युद्ध में निर्णायक भूमिका अदा की, जिसका श्रेय गतिशीलता को जाता है। आज वायु शक्ति और युद्धक विमानों के स्थान पर प्रक्षेपास्त्रों की भूमिका अधिक प्रभावकारी होने लगी है। अमेरिका का स्टार वार तथा राष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र रक्षा कार्यक्रम में गति की ही भूमिका बहुत निर्णायक हो गयी। अन्तरिक्ष के सैनिक उपयोग का व्यापक विवरण लैंगफोर्ड ने अपनी पुस्तक "द फ्यूचर आफ मिलिटरी टेक्नालाजी" में प्रस्तुत किया है।

4. परस्पर सम्पर्क एवं संचार के क्षेत्र में टेलीग्राफ, टेलीफोन, वायरलेस, रेडियों के विकास ने सेना के कमाण्ड एण्ड कंट्रोल प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया है। इसी संचार ने इलेक्ट्रॉनिक्स की विधा को जन्म दिया। अन्तरिक्ष में स्थापित उपग्रहों तथा कम्प्यूटरों से संचार प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न सैनिक केन्द्रों, आयुधों तथा सेना के व्यक्तिगत सैनिक का सीधा सम्बन्ध सेना मुख्यालय से जुड़ गया।

प्रश्न 12. भारत में रक्षा अनुसंधान के भविष्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर - अन्तर्राष्ट्रीय खोतेजिक एवं सामरिक समीकरणों में निरन्तर हो रहे नये परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में सबसे सक्रिय कारक की भूमिका विज्ञान और तकनीकी की है। विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों को नई तकनीकी के हस्तान्तरण प्रतिबन्धों तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार एवं कॉपीराइट अधिकारों के क्षेत्र में प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह न केवल अतिआवश्यक बल्कि अनिवार्य हो गया है कि भारत में रक्षा विज्ञान, अनुसंधान एवं

बी. ए./बी.एस.सी. - III : रक्षा विज्ञान-तृतीय प्रश्न-पत्र * दर्शित निम्न

विकास संगठन के कार्यों पर बहुत ही ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। मुख्य रूप से शताब्दी के आठवें दशक से लेकर आज तक भारत अनुसंधान एवं विकास के अनेक क्षेत्रों में अद्वितीय सफलताएं प्राप्त की है। भारत के सुविख्यात रक्षा विज्ञानी डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल क़ालाम 1995 में विज्ञान कांग्रेस के 42वें अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए कहा कि अनुसंधान एवं विकास संगठन के दस वर्षीय कार्यक्रम के पूरा होने पर 2005 तक भारत उच्च तकनीकी आयुधों, उपकरणों की भारतीय सैनिकों की आवश्यकताओं की आपूर्ति में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होगा तथा अतिरिक्त कल पुर्जों आदि के लिए विदेशी तकनीकी पर निर्भर रहने से मुक्त हो जायेगा। उनके अनुसार इस योजना के पूरे होने पर भारतीय रक्षा उद्योगों का आधारभूत ढाँचा भी मजबूत होगा। रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए तीन चरणों वाली योजना का निर्माण किया गया है।

1. प्रथम चरण में महत्वपूर्ण सैनिक साजो-सामान के अतिरिक्त कल-पुर्जों का स्वदेशीकरण तथा उत्पादन में तीव्र गति से कार्य किया जाय, जिससे इसे विदेशों से आयात करने से मुक्ति मिले।

2. दूसरे चरण में आयुधों के महत्वपूर्ण खण्डों का स्वदेशीकरण किया तथा आयुधों एवं उपकरणों में नई तकनीकी का प्रयोग कर उसकी प्रहारक एवं विध्वंसक क्षमता तथा उसके उपयोग की अवधि को बढ़ाया जाय।

3. तीसरे चरण में उच्च तकनीक के परिष्कृत आयुधों, उपकरणों, विमानों, पोतों, चाहनों, प्रक्षेपास्त्रों और अन्य अतिरिक्त प्रणालियों का विकास तथा उत्पादन भारत में किया जाय, जिससे रक्षा तथा सैनिक शक्ति में स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर तथा शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में सुशक्ति भारत का निर्माण हो। इसके साथ अन्य उच्च तकनीकी क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से संयुक्त रूप से आयुधों के डिजाइन, विकास, उत्पादन तथा व्यापार के क्षेत्र में कार्य करने का निर्णय लिया गया। यह सहयोग प्रक्षेपास्त्र, राडार, इलेक्ट्रॉनिक, लेजर, वैमानिकी एवं स्टील तकनीकी के क्षेत्रों में किया जा रहा है।

वर्ष 1995 में रक्षा क्षेत्र में अनुसंधान, विकास एवं उत्पादन के द्वारा वर्ष 2005 तक 70 प्रतिशत तक आत्म निर्भर होने की योजना बनी थी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए रक्षामन्त्री के सलाहकार की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। जो इस कार्य की समीक्षा करेगी। रक्षा मन्त्रालय की स्थायी समिति ने चौथी रिपोर्ट में इसके लिए दो आवश्यक उपायों का सुझाव दिया।

(1) रक्षा अनुसंधान एवं विकास पर किया जाने वाला व्यय निरन्तर बढ़ाया जाय तथा इसे पूरे रक्षा व्यय का 15 से 20% होना चाहिए। अनेक सैन्य तथा खोज-विशेषज्ञों का ऐसा मानना है कि भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास के क्षेत्र में कुल निवेश बहुत कम हुआ है। इनका विश्वास है कि रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता है जब तक भारत अपने एकल घरेलू उत्पाद का 1 से 2% निवेश अनुसंधान के क्षेत्र में नहीं करने लगता है। वर्तमान वर्ष 2007 में प्रस्तुत रक्षा व्यय में सरकार ने 100,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया, जिसमें रक्षा अनुसंधान एवं विकास पर 5500 करोड़ रुपये व्यय निर्धारित किया गया जो कि रक्षा व्यय का लगभग 6% है जो कि न्यूनतम आवश्यक व्यय के एक तिहाई से भी कम है इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इतने कम व्यय पर आत्मनिर्भरता सदियोंपरान्त नहीं आयेगी। यह प्रश्न अलग है कि अनुसंधान के लिए आवश्यक धन किस प्रकार संग्रहित

तथा व्यवस्थित किया जाए कि वह आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहायक होगा? भारतीय रक्षा एवं अनुसंधान एवं विकास के प्रति नकारात्मक एवं पूर्वाग्रह से ग्रसित कुछ दूसरे विचार भी पढ़ने और देखने को मिलते हैं जिसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि हमारे डी.आर.डी.ओ. संगठन की अनेक विफलताओं और कमियों के कारण धन या सुविधाओं का अभाव नहीं है। बल्कि हमारे विज्ञानियों और इंजीनियरों की योग्यता और कर्तव्यपरायणता में कमी के कारण होती है।

जबकि वास्तविकता यह है कि भारत में रक्षा अनुसंधान पर 1960-61 में स्वतन्त्रता के चौदह वर्षों बाद भी मात्र 1.5 करोड़ रुपये व्यय का प्रावधान किया गया था जो कि अगले बीस वर्षों 1980-81 तक कभी भी रक्षा व्यय के 2% से अधिक नहीं हुआ क्योंकि 1980-81 में 360 करोड़ रुपये के कुल रक्षा व्यय में से अनुसंधान एवं विकास पर मात्र 76 करोड़ रुपया व्यय किया जाता था। जबकि यही वह काल था जब हमने रक्षा अनुसंधान एवं विकास क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परियोजनाओं का शुभारम्भ किया था। अतः भारत में रक्षा एवं अनुसंधान के क्षेत्र में व्यय की बढ़ोत्तरी 1980 के बाद प्रारम्भ हुआ जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।

भारत का रक्षा पर व्यय और रक्षा अनुसंधान एवं विकास पर व्यय (1990 से 2009)

Year	Defence Exenditure in Rs. Crore	Defence R & D Expenditure in Rs. Crore	% of Defence R & D Expenditure in Rs. Crore
1990-91	15426.48	689.57	4.47
1991-92	16347.04	684.91	4.19
1992-93	17581.79	792.17	4.51
1993-94	21844.73	1049.53	4.80
1994-95	23245.23	1247.6	5.37
1995-96	26856.29	1396.26	5.20
1996-97	29505.08	1445.69	4.90
1997-98	35277.99	1958.22	5.55
1998-99	39897.58	2299.61	5.76
1999-00	47070.63	2833.47	6.02
2000-01	49622.04	3355.81	6.76
2001-02	54265.73	3127.97	5.76
2002-03	55661.83	3021.25	5.43
2003-04	60065.80	3443.18	5.73
2004-05	75855.92	3715.27	4.90
2005-06	80800.23	5282.34	6.53
2006-07	86000.00	5457.37	6.34
2007-08	96000.00	5887.22	6.13
2008-09	10600.00	6486.35	6.14

स्रोत: रक्षा मन्त्रालय रिपोर्ट

आज भी यह व्यय रक्षा व्यय का 5 से 6% से ज्यादा नहीं है। इसे सकल राष्ट्रीय उत्पत्ति प्रतिशत के रूप में देखा जाय तो यह आज भी 0.16% से ज्यादा नहीं है। रक्षा विशेषज्ञों का एक वर्ग यह मानता है कि भारत की शान्तिपूर्ण नीति तथा विज्ञान के जनकल्याणकारी उपयोग हेतु जो भौतिक वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र जैसे - परमाणु, अणु, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी इत्यादि के क्षेत्र में पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक नए व्यापक क्षेत्र में प्रयास प्रारम्भ किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में आज विज्ञान के जनशक्ति का उदय सम्भव हो सका है, जिसका लाभ आज राष्ट्र को प्राप्त हो रहा है। भौतिक अनुसंधानों पर व्यय को रक्षा अनुसंधान एवं विकास पर व्यय के साथ ही जोड़ा जाता है परन्तु उसका लाभ आज हम अपनी रक्षा एवं सुरक्षा तथा विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में उठा रहे हैं।

(2) दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने समस्त प्रयासों को एकीकृत कर परस्पर सहयोग एवं तालमेल से विभिन्न चुनौतियों एवं समस्याओं का निदान खोजें तथा अपने वैज्ञानिक एवं अनुसंधान केन्द्रों को इतना साधन सम्पन्न बनाये कि उसमें न केवल भारतीय बल्कि बाह्य देशों की उत्कृष्ट प्रतिभाओं को भी आकर्षित किया जा सके।

मूल्यांकन

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की उपलब्धियों की सूची बहुत लम्बी है, जिनमें से एकीकृत प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम, मुख्य युद्धक टैंक (अर्जुन), हल्का लड़ाकू विमान (तेजस), रिमोट द्वारा चालित वाहन (निशान्त) तथा पाबलट रहित विमान (तक्षक) इत्यादि परियोजनाएँ प्रमुख हैं। परन्तु सेना मुख्य युद्धक टैंक अर्जुन को सेना में शामिल करने के बावजूद भी कुछ सन्तुष्ट नहीं है और अन्ततोगत्वा रूसी टैंक (T-90) को खरीदने का निश्चय किया। जिसकी कुल कीमत 3000 करोड़ रुपये है। हल्का लड़ाकू विमान (एल.सी.ए.) को प्रयोग के योग्य करने में अभी कई वर्ष लगेंगे। भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन से प्राप्त सहयोग और अनुभव तथा तकनीक ने कलाम के प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम को सफल बनाया और इस योजना में विकसित एक मात्र पृथ्वी प्रक्षेपास्त्र ही ऐसा है, जिसे सफल कहा जा सकता है और इसका जो सैनिक उपयोग भी सफल रहा है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के जनक डॉ. कल्याण सिंह विकल्प के रूप में इजराइल से बराक प्रक्षेपास्त्र प्रणाली को खरीदने के 1250 करोड़ के खर्च को अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। परमाणु आयुधों के क्षेत्र में हमारी सफलता का क्षेत्र भी परमाणु विज्ञानियों को जाता है। स्वदेशी परमाणु ऊर्जा से संचालित पनडुब्बी के विकास की परियोजना को 1975 में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्वीकृत प्रदान की थी। परन्तु 7500 करोड़ रुपये व्यय और 32 वर्षों बाद भी सफलता नहीं मिली और दावा किया जा रहा है कि 2000 तक इस को परमाणु ऊर्जा चालित पनडुब्बी मिल जायेगी। यह परियोजना भी उल्टे स्वदेशी तकनीक की है। इस परियोजना में अनेक अनियमितताओं की खबरें भी आती रहीं हैं। इस परियोजना के लेखा परीक्षण रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। अति गोपनीय परियोजना के नाम पर लेखा परीक्षण का मूल्यांकन भी नहीं किया जा रहा है। प्रारम्भिक दस वर्षों तक इस परियोजना का संलग्न नौसेना, भाषा परमाणु अनुसंधान केन्द्र और डी.आर.डी.ओ. इस परियोजना को सफल नहीं बना पाये कि पनडुब्बी के लिए कौन सा विशेषज्ञ उपयोगी होगा? इस परियोजना

पनडुब्बी की डिजाइन नौ सेना को तथा रियेक्टर भाभा एटामिक सेन्टर को उपलब्ध करना था, परन्तु भाभा अनुसंधान केन्द्र के निदेशक और परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष राजा रमन्ना ने नौ सेना को कहा कि वह अपने को रियेक्टर की डिजाइन से अलग रखे। जब 1979 में सोवियत संघ ने अनौपचारिक रूप से परमाणु पनडुब्बियों का एक बेड़ा मुफ्त में देने की पेशकश की थी, तब डी.आर.डी.ओ. और रक्षा के वैज्ञानिक सलाहकार ने यह दावा किया था कि इसे देश में ही बनाया जायेगा। 1987 में सोवियत संघ ने पुनः वही प्रस्ताव दोहराया था। इस बार श्री रमन्ना और बोर्ड के अन्य लोगों ने यह दावा किया था कि हम अविलम्ब ही इसका निर्माण कर लेंगे। अतः हमारी आवश्यकता इसे पट्टे पर लेकर पूरी की जा सकती है और भारत तीन वर्ष के लिए (1988-91) पट्टे पर रूसी परमाणु पनडुब्बी को 'चक्र' नाम से सेना में शामिल किया गया। जिसका उद्देश्य जल्द से जल्द उसकी नकल कर विकल्प प्रस्तुत किया जा सके। आज सोलह वर्षों बाद (1991-2007) भी हम सोवियत रूस से नौसेना के लिए विमान वाहक पोत गार्शकोव की खरीद और उसके साथ परमाणु पनडुब्बी (अकोला II) को पट्टे पर ले रहे हैं। इस सम्पूर्ण खरीदारी पर 650 मिलियन अमेरिकी डालर खर्च होंगे जिसमें पनडुब्बी के पट्टे की राशि 135 मिलियन डालर होगी। यह एक गोपनीय खरीदारी है। अतः हजारों करोड़ की यह परियोजना भी अपनी विफलता की ही दासता बया कर रही है। इन विशाल परियोजनाओं के प्रबन्धन, देखरेख, मूल्यांकन सम्बन्धी अकुशलताओं के कारण वर्षों तक विलम्बित रहने से अनेक आवश्यक कल-पुर्जे विदेशों आयात कर लिए जाते हैं, जिससे कालान्तर में उनकी गुणवत्ता और प्रभावकारिता भी प्रभावित हो जाती है तथा वे वर्षों तक बेकार पड़े रहते हैं।

सतह से सतह पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों का विकास सफल रहा, परन्तु जमीन से हवा, हवा से हवा में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों के क्षेत्र में आज भी स्थिति बहुत सन्तोषजनक नहीं है। कुछ ऐसी ही स्थिति हल्के लड़ाकू विमान परियोजना की भी है। 1983 में स्वीकृत, 5500 करोड़ रुपये व्यय, 50% अधिक आयातित कल पुर्जों के बावजूद भी इसके कार्यकारी रूप का माडल 2008 उत्पादित होने की सम्भावना है। विलम्ब के कारण वायु सेना 126 मिराज 2000 विमानों को विकल्प के रूप में खरीदने पर विचार कर रही है। यद्यपि यह सत्य है कि रक्षा अनुसंधान एवं संगठन की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि भारतीय सेना की आवश्यकताओं पूरा करने के लिए विदेशों से आयातित सैनिक साजो-समान के स्थान पर उनको अपने देश निर्मित एवं उत्पादित किया जाये जिससे सैनिक साजो सामान के आयात पर व्यय होने वाली धनराशि को कम किया जा सके तथा रक्षा एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जाय। परन्तु आज 21वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता के साठ वर्षोपरान्त भी यह संगठन अपने मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका है। फिर भी वास्तविकता पर दृष्टिपात किया जाय तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यह संगठन कई क्षेत्रों में विशिष्ट उपलब्धियों प्राप्त करने में सफल हुआ है और भारत में अनुसंधान एवं विकास का आधारभूत ढाँचागत सैनिक औद्योगिक परिसर के विकास में सफल रहा है और इसी ढाँचे एवं वैज्ञानिक सुविधाओं एवं प्रयोगशालाओं तथा उपकरणों एवं वैज्ञानिकों की सहायता से भारत 21वीं शताब्दी में न केवल अपनी रक्षा एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होगा, बल्कि यह देश के विकास तथा आर्थिक शक्ति को भी सुदृढ़ बनाने में सहायक होगा। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत को सैनिक एवं तकनीकी उत्पादों के आयातक राष्ट्र से निर्यातक राष्ट्र के रूप में बदलने के लिए शिक्षा पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद 0.6% व्यय से सफल

सकेगी। भारत को अपने अनुसंधान एवं विकास पर होने वाले व्यय एवं संसाधनों को बढ़ाना होगा तथा वैज्ञानिकों, इंजीनियरों की सुविधाएँ बढ़ानी होगी, तभी हम आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली राष्ट्र को निर्मित करने के पं. नेहरू के सपनों को साकार कर सकेंगे।

प्रश्न 13. भारत के रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के उद्देश्य, कार्य एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

अथवा भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास पर एक निबन्ध लिखिए।

भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास

उत्तर

भारत में रक्षा अनुसंधान एवं विकास की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात किया जाय तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1946 के मध्य में ब्रिटेन की सैनिक परिषद के वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. ओ.एच. बैन्सबोरो को भारत में रक्षा विज्ञान संगठन की स्थापना के लिए सुझाव देने को कहा गया। नवम्बर 1947 में संगठन की स्थापना कर एक वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त करने का निर्णय किया गया। घटनाक्रम में तीव्रगति से परिवर्तन के कारण अब यह कार्य स्वतन्त्र सरकारों के लिए छोड़ दिया गया। प्रस्तावित रक्षा विज्ञान संगठन के दो प्रमुख कार्य थे।

1. राष्ट्रपति वैज्ञानिक प्रयासों तथा रक्षा की आवश्यकताओं के साथ परस्पर तालमेल स्थापित करना।

2. रक्षा सेनाओं में वैज्ञानिक कार्यों को बढ़ावा देना।

मई 1948 में दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञानसंकाय के अध्यक्ष, डॉ. दौलत सिंह कोठारी को रक्षामन्त्री के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में नियुक्त किया गया और पहली बार राष्ट्र की सुरक्षा के सम्बन्ध में विज्ञान की भूमिका और महत्त्व के बारे में वास्तविक जागरूकता देखने को मिली। पं. जवाहरलाल नेहरू की विज्ञान में गहरी आस्था और वैज्ञानिक विधियों और वैज्ञानिक कार्यों के प्रति उनके लगाव ने सामान्य वैज्ञानिक जागरूकता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. कोठारी ने विज्ञान के आधार भूत आयातों और रक्षा आवश्यकताओं के बीच सम्बन्ध को समझा और महसूस किया कि मौलिक विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन के बिना कोई मौलिक विकास सम्भव नहीं है। अतः एक ओर रक्षा वैज्ञानिकों तथा तकनीकी विकास संस्थाओं के बीच निकट सम्पर्क आवश्यक है तथा दूसरी ओर रक्षा वैज्ञानिकों और असैनिक क्षेत्रों में स्थापित वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्रों जैसे राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और वैज्ञानिक केन्द्रों, विश्वविद्यालयों आदि के बीच भी निकट सम्पर्क होना चाहिए। डॉ. कोठारी 1952 में विश्वविद्यालय वापस चले गये, परन्तु फिर भी 1961 तक इस पद के विशेषाधिकार और शक्तियाँ उसके पास ही रहीं। 1962 में डॉ. एस. भगवन्तम् रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार बने।

एस.एस. भटनाकर जैसे वैज्ञानिकों का एक बोर्ड बनाया। ब्रिटिश वैज्ञानिक प्रो. पी.एस.एम. ब्लैकेट की सलाह पर इसका नाम रक्षा-नीति-विज्ञान-बोर्ड रखा गया और इसमें सेना के तीनों प्रमुखों के साथ वित्त सलाहकार (रक्षा) को भी रखा गया। जिसके अतिरिक्त 1948 में ही 13 अगस्त को एक रक्षा-विज्ञान-सलाहकार समिति बनाने का भी निर्णय किया गया, जिसके अध्यक्ष वैज्ञानिक सलाहकार ही थे। इस समिति का कार्य सैनिक आवश्यकताओं के वैज्ञानिक तकनीकी आयामों पर विचार करना तथा सेना के तकनीकी संस्थानों में अनुसंधान और विकास सम्बन्धी

मामलों में निकट सम्पर्क रखें और रक्षा विज्ञान के सिलसिले में बुनियादी अनुसंधान कराये तथा साथ ही पूरे देश के समग्र वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के साथ निकट सम्पर्क रखे। प्रो. ब्लैकेट के सुझाव पर रक्षा मंत्रालय के अधीन एक रक्षा विज्ञान संगठन की स्थापना की गई, जिसमें वैज्ञानिक सलाहकार के अलावा 40 वरिष्ठ और 100 कनिष्ठ वैज्ञानिकों के पद स्वीकृत किये गये। 15 वैज्ञानिकों पहली टुकड़ी 1949 नियुक्त की गई। 1950 में सेना की तीनों सेवाओं के लिए तीन उप-मुख्य-वैज्ञानिक अधिकारी बनाये गये।

भारत को आधुनिक, शक्तिशाली, विकसित एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने में विज्ञान एवं तकनीकी के महत्त्व एवं भूमिका के पं. नेहरू के व्यापक दृष्टिकोण को रक्षा अनुसंधान के क्षेत्र में लागू करने का श्रये श्री वी. के. कृष्णा मेनन को जाता है। कृष्णा मेनन ने 1958 में रक्षा विज्ञान संगठन (D.S.O.) तथा तकनीकी विज्ञान स्थापनाओं को मिलाकर रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (D.R.D.O.) बनाया। जिसका कार्य सशस्त्र सेनाओं के लिए प्रत्येक के उपकरणों के मूल डिजाइन, प्रायोगिक अनुसंधान और विकास करना था। प्रारम्भिक वर्षों में 30 प्रयोगशालायें और प्रतिष्ठान स्थापित किये गये। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के मुख्यालय में छः तकनीकी निदेशालयों ने छः प्रमुख क्षेत्रों-इलेक्ट्रॉनिक्स, इंजीनियरिंग, एयरोनाटिक्स, वाहन एवं युद्ध क्षेत्र में अनुसंधान प्रयोगशालाओं को संभाला। रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे -

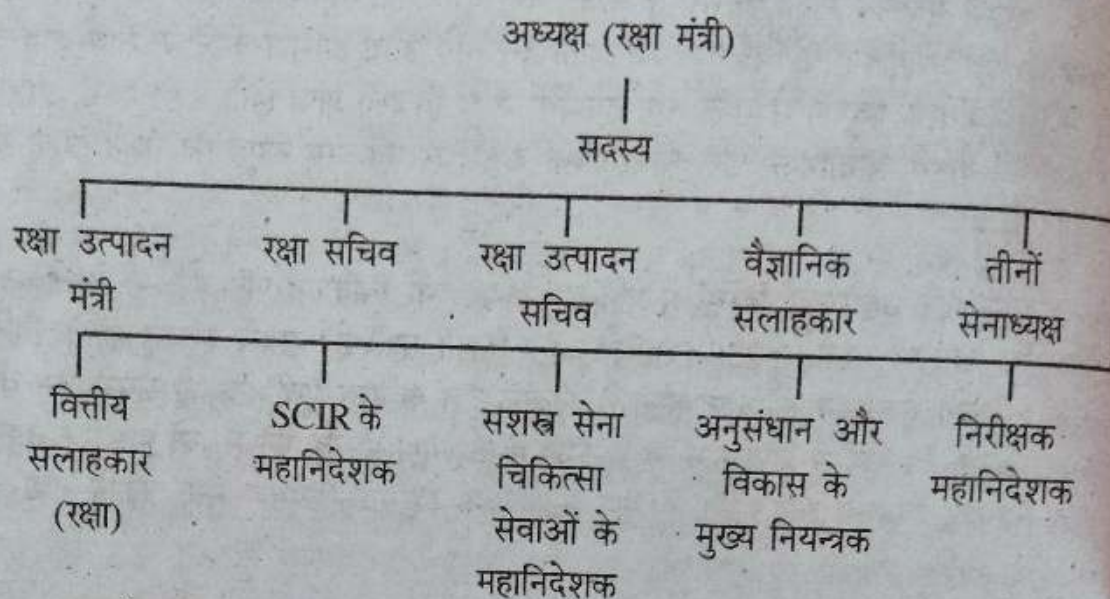
1. सेना मुख्यालयों को वैज्ञानिक सलाह देना।
 2. सेना की समस्याओं के निदान के लिए उपयुक्त अनुसंधान कार्य चलाना।
 3. सेना द्वारा स्पष्ट की गयी सामरिकी के अनुरूप आयुधों तथा अन्य साजो-सामान का डिजाइन तथा विकास करना।
 4. नये तथा देश में बने उपकरणों का मूल्य निर्धारित करना तथा उनका तकनीकी परीक्षण करना।
 5. नये आयुधों के विकास के लिए असैनिक व्यवसायों को तकनीकी सहयोग प्रदान करना।
- इसके बाद रक्षा-विज्ञान-नीति-बोर्ड और रक्षा विज्ञान सलाहकार समितिके स्थान पर एक अनुसंधान विकास सलाहकार समिति का गठन किया गया, जिसके प्रतिष्ठित असैनिक वैज्ञानिक, वरिष्ठ सेना अधिकारी और रक्षा वैज्ञानिक सदस्य थे। कालान्तर में यह अनुभव किया गया कि रक्षा मंत्रालय के सामान्य तंत्र द्वारा रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन को संचालित नहीं किया जा सकता है। तदनुसार अप्रैल 1962 में एक रक्षा अनुसंधान-विकास-परिषद का गठन किया जाय। जिसकी संरचना (चित्र 9.1) में दी गयी है।

इस वैज्ञानिक परिषद के गठन के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् थे -

1. अनुसंधान और विकास में नये व्यक्तियों के प्रशिक्षण और उससे जुड़े मामलों के बारे में कार्यक्रम तैयार करना।
2. अनुसंधान और विकास के बजट प्रस्तावों पर विचार।
3. अनुसंधान विकास के क्षेत्र में किये गये कार्यों की समीक्षा।
4. वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास के कार्य से जुड़े संगठनों से सम्पर्क स्थापित करना।
5. असैनिक अनुसंधान क्षेत्र से जुड़े प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों से सम्पर्क बनाये रखने के लिए सलाहकार समितियाँ और अनुसंधान विकास सेल भी बनाये गये। अनुसंधान विकास परिषद के

कार्यों के संचालन हेतु वैज्ञानिक सलाहकार की अध्यक्षता में एक कार्यकारी समिति समस्त गतिविधियों के लिए उत्तरदायी होती है।

रक्षा अनुसंधान विकास परिषद



भारतीय रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के उद्देश्य का मुख्य बिन्दु "राष्ट्रीय सुरक्षा के सभी वैज्ञानिक और तकनीकी आयाम" है। रक्षा तैयारियों के लिए उपलब्ध प्रतिरोधी और भविष्य में आवश्यक आयुध प्रणालियों, उपकरणों और पदार्थों की आवश्यकता और मांग से रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन सशस्त्र सेनाओं को जल के नीचे से लेकर अन्तरिक्ष तक के व्यापक क्षेत्र में वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग प्रदान करना होता है। रक्षा अनुसंधान से असैनिक जनता के उपयोग की भी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता प्राप्त होती है। यह विभाग सेना की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के स्वदेशी, उपकरणों, सेन्सरों और प्लेटफार्मों के डिजाइन और विकास की अनुसंधान परियोजनाओं में संलग्न है, जिससे रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को प्राप्त किया जा सके।

इसी आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लिए जटिल उच्च सैनिक प्रौद्योगिकी की परियोजनाओं की स्वीकृत तथा प्रबन्धन के लिए 1980 में अलग रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग का गठन किया गया। आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने तथा विदेशी प्रौद्योगिकी पर निर्भरता देश को स्वतन्त्र कराने के लिए डी.आर.डी.ओ. में एक मिशन मोड संरचना है, जिसका प्रमुख रक्षा मंत्री का वैज्ञानिक सलाहकार होता है, जो सचिव, रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग तथा महानिदेशक, अनुसंधान तथा विकास भी होता है। संगठन में द्विस्तरीय प्रणाली है, एक, नई दिल्ली स्थित तकनीकी और कार्पोरेट मुख्यालय तथा दूसरे, पूरे देश में विभिन्न केन्द्रों पर स्थित प्रयोगशालाएँ तथा संस्थान। मुख्यालय दो अलग-अलग प्रकार के निदेशालयों में व्यवस्थित है।

प्रश्न 14. भारत में वायुगैस एवं सौर ऊर्जा के विभिन्न उपयोगों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

बोयामास ऊर्जा

लघु पनबिजली

देश में लघु पनबिजली क्षमताओं का लगभग 15,000 मेगावाट का आकलन किया गया

है। 31 मार्च, 2006 के अन्त तक कुल 1826 मेगावाट की लघु जल परियोजनाएं स्थापित की जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त 468 मेगावाट की परियोजनाएं निर्माणधीन हैं।

शहरी, औद्योगिक और व्यावसायिक कचरे से पुनरोपयोगी ऊर्जा

शहरी एवं औद्योगिक कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी तकनीकों एवं प्रणालियों को बढ़ावा दिया जाता है जिनमें ऊर्जा हासिल करने के साथ-साथ कचरे में कमी, पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति तथा उपयोगी ऊर्जा/बिजली प्राप्त होती है। फरवरी, 2005 में मंत्रालय में शहरी औद्योगिक और व्यावसायिक कचरे पर एक नए समूह का गठन किया गया।

सौर ऊर्जा

भारत के अधिकतर हिस्सों में प्रतिदिन औसत सौर विकिरण प्रति घंटा 4 किलोवाट वर्ग मीटर है। यहां पर औसतन 250-300 दिन घूप खिली रहती है। सबसे ज्यादा वार्षिक विकिरण ऊर्जा पश्चिमी राजस्थान को प्राप्त होती है, जबकि देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र को सबसे कम वार्षिक ऊर्जा मिलती है। सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा में कई गुण मौजूद होते हैं, जो इसे एक आकर्षक तथा टिकाऊ विकल्प बनाते हैं। ये गुण हैं-वैश्विक विस्तार, प्रदूषण मुक्त प्रकृति तथा अनंत आपूर्ति आदि।

अपारंपरिक ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा के स्रोत सूर्य को विशेष महत्व दिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य की ऊपरी सतह का तापमान लगभग 6000 डिग्री सेंटीग्रेड है। ज्यों-ज्यों सूर्य के अंदर प्रवेश किया जाएगा इसके तापमान में बढ़ोत्तरी होती जाएगी। सूर्य के केन्द्र का तापमान, 1,50,00,000 से 2,00,00,000 डिग्री सेंटीग्रेड है। सूर्य ही एक अकेला ऐसा स्रोत है, जो ऊष्मा और प्रकाश दोनों रूप में हमारी मदद करता है। सूर्य हमें अगले 50000 लाख सालों तक ऊर्जा देता रहेगा। इसके बाद यह सिकुड़ने लगेगा और इसका अपना गुरुत्वाकर्षण बल इतना अधिक बढ़ जाएगा कि यह अपनी ही ऊर्जा और प्रकाश को स्वयं निगलने लगेगा। तब एक स्थिति ऐसी आएगी जब यह लाल गोला, तारे में परिवर्तित हो जाएगा तथा फिर श्याम वामन तारा बनकर अंतरिक्ष में कहीं लुप्त हो जाएगा, क्योंकि सूर्य का द्रव्य लगातार घट रहा है।

वर्ष 1981 में पहली बार देश में कमीशन फॉर एडीशनल सोर्सेज ऑफ एनर्जी स्थापित किया गया, जो अगले ही वर्ष अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत विभाग अर्थात् डीएनईएस में बदल गया और यह विभाग वर्ष 1992 में अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय में परिवर्तित हो गया।

वॉशिंगटन स्थित वर्ल्डवॉच इंस्टिट्यूट के अनुसार दुनिया भर में अक्षय ऊर्जा के क्षेत्र में निवेश बढ़ता जा रहा है। इस समय इस क्षेत्र में 30 अरब डॉलर से अधिक का निवेश किया जा चुका है, जो बिजली उद्योग में कुल निवेश का 20-25 प्रतिशत है। अक्षय ऊर्जा में सौर ऊर्जा का दोहन और इसमें निवेश सबसे ज्यादा है। दुनिया के 48 देशों में ऐसी नीतियां बनाई गई हैं, जिनसे अक्षय ऊर्जा के प्रसार को प्रोत्साहन मिल रहा है। ऐसे देशों में भारत सहित 14 विकासशील देश भी शामिल हैं।

सौर ऊर्जा दो विधियों के द्वारा उपयोग में लाई जा सकती है। तापीय विधि में ऊष्मा का इस्तेमाल पानी गर्म करने, खाना पकाने, जल शुद्धिकरण, विद्युत उत्पादन तथा अन्य कार्यों के लिए किया जाता है। प्रकाश वोल्टीय विधि के अंतर्गत सौर ऊर्जा को बिजली में परिवर्तित किया जाता है। इसका उपयोग कई कार्यों के लिए किया जाता है, जैसे-प्रकाश व्यवस्था, पंपिंग, संचार आदि।

सौर ऊर्जा के विभिन्न उपयोग

देश में कुछ समय से सुदूर ग्रामीण अंचलों में जहां सामान्य विद्युत आपूर्ति संभव नहीं है वहां सौर ऊर्जा से विद्युत प्रकाश उपलब्ध कराया जा रहा है। इससे उन क्षेत्रों में टेलीविजन आदि भी चलाए जाते हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम के सुझाव के अनुसार राष्ट्रपति भवन में बिजली तथा ऊर्जा की जरूरतें पूरी करने के लिए सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित करने की योजना बनाई गई। इसके अंतर्गत 8 मेगावाट का सौर ऊर्जा विद्युत स्टेशन स्थापित किया जाएगा, जो संपूर्ण राष्ट्रपति भवन परिसर की बिजली की जरूरतें पूरी करेगा। इस वैकल्पिक ऊर्जा व्यवस्था से राष्ट्रपति भवन में खर्च होने वाली बिजली में 25 से 30 प्रतिशत की बचत होगी और इस विद्युत स्टेशन पर आने वाली लागत अगले कुछ वर्षों में ही होने वाली बचत से वसूल हो जाएगी।

सौर तापक

विश्व में सौर ऊर्जा का सामान्यतया इस्तेमाल पानी गर्म करने के लिए किया जाता है। सबसे छोटा उपलब्ध सौर जल तापक 100 लिटर प्रतिदिन की क्षमता का है जो 4-5 सदस्यों वाले परिवार के लिए पर्याप्त है। इस पर 15,000 रुपये से 18,000 रुपये के बीच लागत आती है। इस सौर जल तापन प्रणाली से 1500 यूनिट बिजली प्रतिवर्ष बचाई जा सकती है। यह सौर जल तापक 15 से 20 वर्ष तक काम कर सकता है।

सौर कुकिंग

भारत में सौर ऊर्जा के उपयोगों में कुकिंग (खाना पकाना) सबसे आम है। विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग प्रकार के सौर कुकर उपलब्ध हैं। इससे ईंधन पर बार-बार खर्च नहीं करना पड़ता। अगर इसका उपयोग नियमित रूप से किया जाए तो एक बॉक्स सोलर कुकर से 3 से 4 रसोई गैस सिलिण्डरों की प्रतिवर्ष की बचत हो सकती है। इससे पर्यावरण में किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलता है और पारंपरिक ऊर्जा का संरक्षण होता है। सौर कुकिंग एक धीमी प्रक्रिया है और इसलिए इसमें पका हुआ खाना ज्यादा बेहतर तथा पौष्टिक होता है। परन्तु इसकी एक सीमा भी है, सौर कुकर साफ धूप वाले दिन ही अच्छे तरह कार्य करता है।

सौर ऊर्जा के माध्यम से 500 जवानों के लिए खाना तैयार करने के लिए सेना ने जम्मू-कश्मीर में लद्दाख के लेह क्षेत्र में अपने कैम्प में अप्रैल, 2005 में एक सौर स्टीम कुकिंग प्रणाली की स्थापना करके ईंधन की बचत के साथ-साथ पर्यावरण की रक्षा भी की है। इस प्रणाली की एक विशेषता यह है कि यह शून्य से कम तापमान और बर्फबारी की स्थिति में भी काम करती रहती है क्योंकि यह प्रणाली सौर विकिरण पर आधारित है और सर्दी के मौसम के दौरान सौर विकिरण बेहतर होता है।

सौर शुष्कन प्रणाली

कई कृषिगत तथा औद्योगिक उत्पादों के प्रसंस्करण या परिरक्षण के लिए नमी की मात्रा में कमी लाने की आवश्यकता होती है। इसके लिए सुखने (शुष्कन) की प्रणाली की जरूरत पड़ती है। सौर ऊर्जा संग्राहियों द्वारा गर्म की जाने वाली हवा का उपयोग करते हैं तथा इन्हें गर्म हवा की आवश्यकताओं के अनुसार मॉड्यूल्य में स्थापित किया जा सकता है, जबकि वर्तमान

शुष्कन में पारंपरिक ईंधन जैसे बायोमास, तेल या बिजली का उपयोग किया जाता है। ये ईंधन महंगे हैं तथा इनके उपयोग द्वारा प्रदूषण फैलता है। अधिकतर उत्पादों के लिए सूर्य शुष्कन सबसे कम खर्चीला तथा व्यापक उपयोग में लाए जाने वाला विकल्प है। पारंपरिक ईंधनों की बढ़ती लागत तथा प्रदूषण के खतरों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण सौर शुष्क कई औद्योगिक एवं कृषि कार्यों के लिए तकनीकी एवं आर्थिक दृष्टि से व्यवहारिक विकल्प बनते जा रहे हैं। परन्तु इसकी एक सीमा भी है, यह प्रक्रिया बहुत ज्यादा समय लेती है।

देश में कृषि उत्पाद तथा फल एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में उपयोग हेतु सौर शुष्कों की काफी संभावनाएं मौजूद हैं। सौर शुष्क प्रणालियां विभिन्न औद्योगिक उत्पाद जैसे रसायन, चमड़ा, नमक, प्लाईवुड तथा कपड़ा उद्योग में सुखाने के कार्य के लिए स्थापित किए जा सकते हैं। सौर शुष्क विभिन्न घरेलू कार्यों में भी उपयोग में लाये जा सकते हैं। इनका कपड़ा उद्योग, लकड़ी, फल एवं खाद्य प्रसंस्करण, कागज, औषधियों तथा कृषि उद्योगों के कई कार्यों में भी उपयोग किया जा सकता है। यह सौर शुष्क 15 से 20 वर्षों तक कार्य कर सकते हैं। इनकी कुछ सीमाएं भी हैं, जैसे सौर शुष्कन प्रक्रिया पारंपरिक ईंधन के उपयोग द्वारा किए जाने वाले शुष्कन की तुलना में धीमी है तथा इनका उपयोग केवल 40 से 50 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में सुखाने के लिए ही किया जा सकता है।

सौर लालटेन

सौर लालटेन पोर्टेबल प्रकाश प्रणाली हैं। यह हल्की होती है। यही कारण है कि यह घर के अंदर और बाहर, दोनों जगह इस्तेमाल की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में सौर ऊर्जा का इस्तेमाल पोर्टेबल लालटेन, एक या दो लैम्प वाली घरेलू रोशनी प्रणालियों और गलियों में रोशनी करने के लिए किया जा रहा है। शहरी इलाकों में इसका उपयोग गलियों में चमकते लाइट एमिटिंग डायोड पर आधारित प्रदर्शन-पटलों ट्रैफिक संकेत प्रणालियों, संदेश प्रदर्शित करने की प्रणालियों तथा विज्ञापन-पटल को चमकाने के लिए किया जा रहा है।

सौर गृह प्रणाली

सौर गृह प्रणाली घर के एक या अधिक कमरों में आरामदायक प्रकाश उपलब्ध कराती है। एक, दो या चार काम्पेक्ट फ्लोरोसेंट लैम्प वाली कई किस्म की सौर गृह-प्रणालियां उपलब्ध हैं। इस प्रणाली से छोटा डीसी पंखा 12 वोल्ट डीसी टेलीविजन भी चलाया जा सकता है।

सौर जनरेटर

सौर जनरेटर पीवी व्यूह पर आधारित बैटरी बैंक तथा उपयुक्त आकार के इनवर्टर से जुड़ी हुई एक लघु क्षमता वाली स्वतंत्र एसीपीवी शक्ति प्रणाली है।

व्यावसायिक कचरे और अपशिष्ट से ऊर्जा उत्पादन

औद्योगिक और व्यावसायिक कचरे और अपशिष्ट से ऊर्जा प्राप्त करने/बिजली उत्पादन के कार्यक्रम का लक्ष्य प्रोसेसिंग/ऊर्जा प्राप्त करने/बिजली उत्पादन के लिए औद्योगिक कचरे और अपशिष्ट का उपचार करने के साथ-साथ कचरे और पर्यावरण प्रदूषण को कम करना है। इसके लिए प्रति मेगावाट 50 लाख से एक करोड़ रुपये की सब्सिडी उपलब्ध हैं लेकिन ये कचरे के प्रकार और अन्य शर्तों पर निर्भर करता है।

2005/06 के दौरान औद्योगिक कचरे से 1.5 मेगावाट ऊर्जा उत्पादन के लिए परियोजना शुरू की गयी। 21.75 मेगावाट की क्षमता की छह परियोजनाओं पर काम चल रहा है। बायोगैस/ऊर्जा उत्पादन के लिए 26.25 मेगावाट क्षमता की औद्योगिक कचरे से ऊर्जा परियोजनाएं मार्च 2006 से शुरू हो गई थीं।

उद्योग में बायोमास और गन्ने की खोई से प्राप्त ऊर्जा

उद्योगों में बायोमास ऊर्जा और गन्ने की खोई से प्राप्त ऊर्जा को वर्ष 2005/06 के दौरान विकसित किया गया और इसकी घोषणा की गयी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ताप ऊर्जा/बिजली उत्पादन के लिए गन्ने की खोई का इस्तेमाल करना है जिनका उपयोग उद्योगों को ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए कैपिटल जरूरतों के लिए किया जाता है। परियोजना के लिए प्रति मेगावाट 20 लाख 1.5 करोड़ रुपये सब्सिडी उपलब्ध है लेकिन ये परियोजना के प्रकार और शर्तों पर निर्भर करता है। वर्ष 2005/06 के दौरान 7.5 मेगावाट क्षमता की गन्ने की खोई से प्राप्त ऊर्जा की दो बायोमास परियोजनाएं और 6.5 मेगावाट क्षमता की 25 गैसीफायर प्रणालियां विभिन्न उद्योगों में स्थापित की गयी हैं ताकि वे अपनी ताप/ऊर्जा की जरूरतों को पूरा कर सकें।

प्रश्न 15. नाभिकीय युग में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की विवेचना कीजिए।

उत्तर - किसी देश की अर्थव्यवस्था का आधार ऊर्जा ही होती है। सन् 1950 में भारतीय ऊर्जा उत्पादन केवल 17/3mw थी, जो 2007-08 में बढ़कर 1127.058mw हो गई तथा ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में भारत-सरकार के अन्तर्गत कोयला, पेट्रोलियम, ताप ऊर्जा, गैस ऊर्जा इत्यादि तो हैं ही, परन्तु सरकार ने उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए सन् 1982 में 'गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत' विभाग का गठन भी किया जो सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव ऊर्जा इत्यादि का प्रबंधन करता है।

ऊर्जा स्रोत

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा सैद्धान्तिक रूप से केन्द्र से स्वामित्व एवं केन्द्र द्वारा संचालित राष्ट्रीय पावर ग्रिड की स्थापना 1981 में की गई, जिससे 2003-04 में कुल विद्युत उत्पादन 558.1 (हुआ)।

1. कोयला-कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य 7 सहवर्ती संस्थाएँ कोयला क्षेत्र का प्रबंधन देखती हैं तथा नवेली लिग्नाइट का भी प्रबंधन देखती हैं।

2. तेल एवं प्राकृतिक गैस - इस क्षेत्र में नियंत्रण के लिए तीन संगठन हैं -

1. तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC)

2. आयल इंडिया लिमिटेड (OIL)

3. गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया (GAIL)

भारत में कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस उत्पादन क्षेत्र में आत्मनिर्भरता लाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में कई तेल प्राप्ति संभावित क्षेत्र चिन्हित भी किये जा चुके हैं। परम्परागत जीवाश्म तेल के साथ-साथ वैकल्पिक ईंधन के प्रयोग की भी कोशिश हो रही है। CNG का प्रयोग वर्तमान में व्यापक रूप में किया जा रहा है जो LPG की तुलना में कम खर्चीला तथा पर्यावरणीय-मैत्री भी है। इसी के साथ नवीकरण ईंधन स्रोतों के प्रयोग पर भी बल दिया जा रहा है। ज्ञातव्य है कि नवीकरण स्रोतों में एथेनॉल है, जो रासायनिक गैसों की मात्रा को भी घटाती है।

इसी प्रकार डीजल के स्थान पर बायोडीजल का प्रयोग भी प्रारम्भ हुआ है। भारत में पाये जाने वाले रतनजोत, करंज इत्यादि बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। इसके प्रयोग से वायु-प्रदूषण की मात्रा में उल्लेखनीय कमी पायी गई है 10 प्रतिशत बायोडीजल को डीजल में मिश्रित कर सरकार वितरित कर रही है। इससे न केवल डीजल मूल्य-वृद्धि पर अंकुश लगा है अपितु पर्यावरण की भी रक्षा की जा रही है, अतः भविष्य में इसका महत्व बढ़ना अवश्यभावी है।

नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में

परमाणु के नाभिक से प्राप्त की गई ऊर्जा को नाभिकीय ऊर्जा कहते हैं। रासायनिक ऊर्जा इस श्रेणी में नहीं आती क्योंकि इसकी प्राप्ति रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप होती है, अतः इसका नाभिक से कोई संबंध नहीं है।

नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास की आधारशिला प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से डॉ. होमी जहाँगीर भाभा ने 1948 में रखी। इन्हीं की अध्यक्षता में परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। नाभिकीय ऊर्जा से संबंधित सभी कार्यक्रम प्रधानमंत्री के तत्वाधान में किये जाते हैं। भारत में नाभिकीय ऊर्जा तथा इससे संबंधित क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास के चार महत्वपूर्ण संस्थान हैं -

1. भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC) : 1955 में मुम्बई के ट्रॉम्बे में स्थापित किया गया। (BARC) परमाणु अनुसंधान तथा संबद्धन में कार्यरत देश का प्रमुख केन्द्र है। इस केन्द्र में विकसित कई प्रौद्योगिक का हस्तांतरण उद्योगों में उपयोग के लिए किया गया है, जैसे - अप्सरा, सारस तथा ध्रुव इत्यादि। इस केन्द्र में अन्य सुविधाओं में यूरेनियम-233 का ईंधन के रूप में प्रयोग करने वाला शोध रिएक्टर 'पूर्णमा-3' न्यूट्रान स्रोत रिएक्टर कामिनी 'कलपक्कम' शामिल है। इसी केन्द्र ने 84 नोड वाला 'अनुपमेय' सुपर कम्प्यूटर विकसित किया है जिसकी गति-सीमा 15 गीगा अनुदेशन/सेकण्ड है।

सौर ऊर्जा

सूर्य, ऊर्जा का सर्वाधिक व्यापक तथा असीमित स्रोत है। सूर्य द्वारा पृथ्वी को प्राप्त समस्त ऊर्जा का केवल 1 प्रतिशत भाग ऊर्जा की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। सौर ऊर्जा की उपयुक्तता विकासशील देशों के लिए अत्यधिक है। इसके उत्पादन की दो विधियाँ हैं। प्रथम विधि के अंतर्गत सूर्य के सीधे सौर्यिक सेलों (Solar Photovoltaic Cells) द्वारा अधिग्रहित उपयोग कर लिया जाता है तथा द्वितीय, सूर्य किरणों द्वारा प्राप्त ऊर्जा को विद्युत शक्ति में परिवर्तित कर उपयोग किया जाता है।

भारत में 100w का सौर-ऊर्जा स्थल भारत में अलीगढ़ एवं नरौरा के निकट कल्याणपुर ग्राम में क्रियाशील है तथा जोधपुर के निकट निर्माणधीन है।

सौर ऊर्जा में किसी कच्ची सामग्री के प्रयोग की समस्या नहीं है तथा सोलर सेलो का भी अधिक रखरखाव नहीं करना पड़ता है परन्तु इनके प्रयोग में सर्वाधिक बाधा इस तकनीक का अत्यधिक महंगा होना है। सरकार ने इस पर ध्यान देना प्रारम्भ किया है तथा इस पर उपयुक्त सब्सिडी देकर इसको प्रोत्साहित कर रही है। अतः वर्तमान में सौर ऊर्जा से सिंचाई हेतु पम्प, रेफ्रीजरेटर, घर में प्रकाश तथा दूर-संचार के साधन जैसे रेडियो, टेलीविजन इत्यादि का प्रचलन त्वरित गति से बढ़ रहा है।

पवन ऊर्जा

पवन ऊर्जा के लिए वायु की आदर्श गति 8mekks से लेकर 23mekkse है। दृष्टिकोण से भारत पवन ऊर्जा की संभावनाओं वाला देश है क्योंकि इसके वायु की गति राष्ट्रीय औसत 9.4 है।

भारत में पवन ऊर्जा की क्षमता न्यूनतम 45000mw है तथा इसका विश्व में चौथा स्थान है। तमिलनाडु, गुजरात, आंध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र राज्य के क्षेत्र इसके लिए आदर्श स्थिति रखते हैं। वर्तमान में पवन ऊर्जा संयंत्रों का निर्माण करने वाली सबसे बड़ी कम्पनी 'सुजलान' है।

जल विद्युत

जल विद्युत के लिए राष्ट्रीय पन-बिजली निगम की स्थापना 1975 में की गई। इसका मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय क्षेत्र में पनबिजली का विकास अनुसंधान, निर्माण संचालन तथा रखरखाव करना तथा बांधों को बहुदेशीय परियोजनाओं की तरह विकसित करना है। इसकी कुल स्थापित क्षमता 2175mw है।

समुद्री ऊर्जा

समुद्र से संबंधित प्राप्त ऊर्जा को समुद्री कहते हैं। यह मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं।

1. **समुद्र तापीय ऊर्जा** : समुद्र के विभिन्न स्तरों के तापांतर से प्राप्त ऊर्जा को समुद्र तापीय ऊर्जा या OTEC (समुद्री तापीय ऊर्जा संरक्षण) कहते हैं। तमिलनाडु में 100mw की OTEC यूनिट स्थापित की गई है। इस तरह का यूनिट स्थापित करने वाला भारत विश्व का प्रथम देश है।

2. **तरंग ऊर्जा** : समुद्री तरंग में अल्पावधि के लिए ऊर्जा का संचय हो जाता है। जिससे विद्युत का उत्पादन किया जाता है जिसे तरंग ऊर्जा की संज्ञा दी गई है 150 (क्षमता वाला एक संयंत्र त्रिवेन्द्रम के विड़िंगम में लगाया गया है।

3. **ज्वारीय ऊर्जा** : जिस तटीय क्षेत्र में ज्वार का विस्तार अत्यधिक होता है वहां ज्वारीय ऊर्जा प्राप्ति की संभावनाएं अच्छी होती हैं इसके लिए खाड़ी (अनुमानित 7000mw) कच्छ की खाड़ी (1000mw) तथा पूर्वी तट पर सुन्दर-वन (100mw) महत्वपूर्ण है।

भूतापीय ऊर्जा

भूतापीय ऊर्जा के रूप में पृथ्वी पर ऊर्जा का विशाल भण्डार है। अनुमानित है कि यदि पृथ्वी के ताप के 1km^3 को 1000°C ठण्डा किया जाय तो उसमें 6800mw ऊर्जा निस्टन होगी। जो मुख्यतः चार प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

- प्राकृतिक वृहत जल जैसे गीजर, तप्त झरने।
- भूगर्भीय दबाव युक्त तापीय क्षेत्र।
- मैग्मा।
- गर्म शुष्क चट्टान तंत्र।

इसके उत्पादन का व्यय अधिक होने के कारण 21वीं सदी में इसके दोहन की अपार सम्भावनाएँ हैं। भारत में हिमालय विशेषतः उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में इसकी संभाव्यता अधिक है।

बायो-मास-ऊर्जा

ग्रामीण क्षेत्रों के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऊर्जा बायोगैस है। इसमें गोबर तथा अन्य अपशिष्टों से ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। भारत में मवेशियों की संख्या सर्वाधिक होने के कारण गोबर की सहज सुलभता है तथापि इन संयंत्रों से प्राप्त अवशिष्ट से उत्तम कोटि का खाद प्राप्त होता है जो कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम है। इससे ग्रामीण स्वच्छता को भी बढ़ावा मिलता है।

प्रश्न 16. आधुनिक युद्धकला में कमाण्ड, कंट्रोल और कम्युनिकेशन के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उत्तर -साधारण टेलीफोन लाइन तांबे के तार पर आधारित होती है तथा पूरे विश्व में इसका उपयोग किया जाता है। इस लाइन के माध्यम से ध्वनि के साथ-साथ आंकड़ों की सेवा भी उपलब्ध कराई जाती है। इसकी संचार क्षमता अत्यंत कम होती है। यदि इसका उपयोग आंकड़ों के लिए किया जाय तो इसका संचार और भी धीमा हो जाएगा। इसी कारण इसे 'नैरो-बैंड' कहते हैं। परन्तु नई तकनीक डिजिटल सब्सक्राइबर लाइन (डीएसएल) के विकास के साथ तांबे के तार के माध्यम से भी उच्चगति के आंकड़ों का संचार संभव हुआ है। इसके उपभोक्ता के पास केवल एक डीएसएल मोडम की आवश्यकता पड़ती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आंकड़ों के संचार के साथ-साथ इसको साधारण टेलीफोन लाइन के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। सामान्यतः इसकी गति 256 केवीबीपीएस या उससे अधिक होती है। ज्ञातव्य है कि भारत सरकार के अनुसार न्यूनतम 256 केवीबीपीएस को ही ब्राडबैंड माना जाता है। इसकी उपलब्धता के लिए देश में बीएसएनएल, एमटीएनएल, रिलायंस तथा एयरटेल जैसी मुख्य सेवा प्रदाता कंपनियां देश में अग्रणी हैं।

त्वरित संचार की प्रमुख प्रौद्योगिकी

यह टेलीविजन कार्यक्रम उपलब्ध करवाने वाले केवल प्रणाली द्वारा ब्राडबैंड सेवा उपलब्ध कराता है। यह काफी हद तक मोबाइल फोन के समान है। भारत में इसका उपयोग अत्यन्त लघु पैमाने पर किया जाता है। रिलायंस तथा टाटा इण्डिकॉम इसमें अग्रणी सेवा प्रदाता कंपनियां हैं।

वाई-फाई तकनीक

यह संचार के लिए अत्यधिक लोकप्रिय है। यह नाम 'वायरलेस फाइडलिटी' का संक्षिप्त रूप है। इसका महत्व सर्वाधिक इसलिए है कि यह एक प्रकार की तारविहीन संचार सेवा है। वाई-फाई के आगमन के पूर्व यह आवश्यक था कि संचार के लिए जिस साधन (जैसे कम्प्यूटर) का प्रयोग किया जाए तो वह केवल, टेलीफोन या तार से अवश्य ही जुड़े हो, परन्तु इसमें हॉट-स्पॉट के अन्दर सूचना संचार या इण्टरनेट का उपयोग किया जा सकता है। जो स्थान वाई-फाई संकेतों को ग्रहण करने की सीमा के भीतर आते हैं, उसे हॉट-स्पॉट कहते हैं। इसके द्वारा लगभग 100 मीटर की परिधि के भीतर ब्राडबैंड सेवा उपलब्ध होती है। जिसका सबसे अच्छा उपयोग लैप-टॉप के माध्यम से किया जा सकता है।

भारत का वाई-फाई बाजार 2011-12 तक बढ़कर 89.1 करोड़ डॉलर तक पहुंचने की आशा है। वर्ष 2007-08 में हॉट-स्पॉट की संख्या में 100 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई तथा 1600 तक पहुंच गई। इस वर्ष इसमें कई गुना तक वृद्धि की उम्मीद है। टाटा कम्प्युनिकेशन ने

350 से ज्यादा सार्वजनिक हॉट-स्पॉट बनाए हैं तथा वर्ष 2008 के अंत तक यह संख्या बढ़कर 1000 तक करने का कंपनी का लक्ष्य था। बीएसएनएल 10,000 कम्युनिटी सर्विस सेन्टर की स्थापना कर रहा है। इसमें काफी संख्या में वाई-फाई सुविधा वाले होंगे। कई प्रकार की प्रौद्योगिकी जैसे डीएसएल वाई-मैक्स इत्यादि के साथ वाई-फाई की पूरक प्रकृति होने के कारण तथा उपयोगकर्ताओं को अंतिम समय तक संपर्क देने के लिए सेवा प्रदाताओं की यह स्वाभाविक पसंद है। वाई-फाई तकनीक का सर्वाधिक सकारात्मक पहलू तार बिछाने के खर्च की बचत है। साथ ही इसके उपयोग में चलनशीलता होने के कारण इसको अपनाए जाने की संख्या बढ़ती जा रही है। न्यूयार्क, वाशिंगटन डी. सी. तथा पेरिस जैसे महानगरों का एक बड़ा भाग हॉट-स्पॉट के रूप में परिवर्तित हो चुका है। भारत में सर्वप्रथम अक्टूबर 2004 में वाई-फाई तकनीक से सुसज्जित होने वाला शहर 'मैसूर' है।

वाई-मैक्स

वाई-मैक्स भी एक उच्च गतिशालिनी लम्बी परास की एक वायरलेस युक्ति है, जो वाई-फाई तकनीक की उत्तराधिकारिणी कही जा सकती है। इसकी प्रणाली भी वाई-फाई के समान ही है परन्तु इसका परास कई किलोमीटर की परिधि में है। इसके प्रयोग से हॉट-स्पॉट की संख्या में कमी होगी तथा हॉट-स्पॉट का परास बढ़ने के साथ ही साथ इसकी गुणवत्ता भी बढ़ जाएगी। इंटेल कंपनी वाई-मैक्स तकनीक से युक्त चिप वाले लैपटॉप के साथ बाजार में आई है। वर्तमान में इसका प्रयोग भारत में नहीं किया जाता, परन्तु एक भारतीय कंपनी 'डिशनेट वायरलेस' ने चेन्नई में वाई-मैक्स नेटवर्क की स्थापना की है। आने वाले दिनों में भारत में इसका प्रचलन बढ़ने की संभावना है।

उपग्रह ब्राडबैंड सेवा

भारत में उपग्रह के माध्यम से ब्राडबैंड सेवा का अत्यन्त उपयोग है। फिर भी आईएन-एसएटी के माध्यम से व्यावसायिक उपयोग के लिए आंकड़ों की संचार सेवा उपलब्ध कराई जा रही है। वर्तमान में उपग्रह द्वारा नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (एनएसई) के आंकड़े उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

वर्तमान में इण्टरनेट, सड़क, टेलीफोन तथा बिजली के समान ही किसी भी समाज के लिए एक ढांचागत आवश्यकता बन गया है। चूँकि इसका कोई केन्द्रीय प्रबंध नहीं होता है तथा इसका कोई मुख्यालय नहीं होता है। इसे कोई चलाता भी नहीं है और न ही इसके लिए कोई शुल्क लेता है। अतः संचार के इस विश्वव्यापी जाल के साकार होने से गांव रूपी विश्व अर्थात् 'ग्लोबल-विलेज' की संकल्पना, यथार्थ बनती जा रही है।

सेल्युलर मोबाइल टेलीफोन सेवा

देश को 23 सेवा क्षेत्रों में विभाजित किया गया है जिसमें सेल्युलर मोबाइल टेलीफोन सेवा (सीएसटीएस) प्रदान करने हेतु 19 दूरसंचार सक्रिल सेवा क्षेत्र और 4 मेट्रो सेवा क्षेत्र शामिल हैं।

राष्ट्रीय दूरसंचार नीति (एनटीपी) - 1994 के अनुसार, मोबाइल टेलीफोन सेवा में उदारीकरण के पहले चरण का आरंभ नवंबर, 1994 में दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता और चेन्नई के 4 मेट्रो शहरों में 8 निजी कंपनियों को सीएसटीएस के 8 लाइसेंस जारी करने के साथ हुआ। तदनन्तर, 1995 से 1998 के दौरान 14 निजी कंपनियों को भी 18 क्षेत्रीय दूरसंचार सर्किलों के

दर्शितानोदय

लिए 34
लिए अ
लाइसेंस
राशि का
निर्धारित
करने की
करना अ

लिमिटेड

भागों में

इसके अ

चौथे से

इंटरनेट

को इण्ट

विश्वव्या

कार्यक्रम

प्रौद्योगिक

नेटवर्क

में 20वीं

रक्षा अ

कहलात

किया

इसके

इण्टरने

(सर्वर)

वॉयस

मोबाइल

उपस्कर

अंतर्राष्ट्र

छोड़क

(एजीअ

एजीआ

में 2जी

लिए 34 लाइसेंस जारी किए गए। इस अवधि के दौरान, प्रत्येक सेवा क्षेत्र में सीएमटीएस के लिए अधिकतम दो लाइसेंस प्रदान किए गए और इन लाइसेंस को पहला और दूसरा सेल्युलर लाइसेंस कहा जाता था। इन लाइसेंस धारकों को वार्षिक रूप से लाइसेंस शुल्क की निर्धारित राशि का भुगतान करना होता था जो कि बोली प्रक्रिया के दौरान स्वीकृत राशि के आधार पर निर्धारित किया गया था। तदनंतर, उन्हें नई दूरसंचार नीति एनटीपी 1999 व्यवस्था में माइग्रेट करने की अनुमति थी, जहां उन्हें राजस्व हिस्सेदारी के आधार पर लाइसेंस शुल्क का भुगतान करना अपेक्षित होता है जो कि 1 अगस्त, 1999 से प्रभावी है।

राज्य के स्वामित्व वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (पीएसयू) महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड (एमटीएनएल) और भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) को देश के विभिन्न भागों में तीसरे प्रचालक के रूप में सीएमटीएस प्रदान करने के लिए लाइसेंस जारी किए गए थे। इसके अलावा सितंबर-अक्टूबर, 2001 में मेट्रो शहरों तथा 13 दूरसंचार सर्किलों में प्रत्येक में चौथे सेल्युलर प्रचालक के रूप में 17 और नए लाइसेंस जारी किए गए हैं।

इंटरनेट

मेसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) के जेसीआर लिकप्लाइडर (1962) को इण्टरनेट संकल्पना का वैचारिक जनक माना जाता है। उन्होंने कम्प्यूटर की एक ऐसी विश्वव्यापी तथा अंतर्सम्बन्धित शृंखला की कल्पना की थी, जिसके द्वारा कहीं भी आंकड़ों व कार्यक्रमों को तुरंत प्राप्त किया जा सके। इसी संस्थान के लियोनार्डो क्लिन रॉक ने पैकेट स्विचिंग प्रौद्योगिकी के रूप में व्यवहार्यता की दिशा में पहली सफलता दिलाई वस्तुतः इण्टरनेट, इण्टरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्तरूप है। दूरसंचार के क्षेत्र में पेजर तथा सेल्युलर फोन के बाद यह अनुसंधान विश्व में 20वीं सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इण्टरनेट की शुरुआत सर्वप्रथम अमेरिका के रक्षा अनुसंधान विभाग में हुई थी, जिसमें सिर्फ चार कम्प्यूटर एक दूसरे जुड़े हुए थे।

असंख्य अलग-अलग कम्प्यूटर नेटवर्क को मिलाकर बना विश्वव्यापी नेटवर्क इण्टरनेट कहलाता है। इण्टरनेट की सहायता से विश्व के किसी भी भाग में सरलता से संबंध स्थापित किया जाता है। भारत में इण्टरनेट की सुविधा बीएसएनएल ने अगस्त 1996 से प्रारंभ की। इसके अतिरिक्त आजकल कई निजी कम्पनियां भी इण्टरनेट की सेवा प्रदान कर रही हैं। इनको इण्टरनेट सर्विस प्रोवाइडर कहा जाता है। सेवा प्रदान करने वाले मुख्य कम्प्यूटर को परिसेवक (सर्वर) कहते हैं। इण्टरनेट के अन्तर्गत वेबसाइट, ई मेल तथा इण्टरनेट एक्सप्लोरर आते हैं।

लाइसेंस करार की शर्तों के अनुसार, सेल्युलर प्रचालक अपने प्रचालन क्षेत्र के भीतर वॉयस और नॉन वॉयस से देशों, डाटा सेवाओं तथा सार्वजनिक कॉल केन्द्रों सहित सभी प्रकार की मोबाइल सेवाएं प्रदान करने के लिए स्वतंत्र है। इसके लिए वे किसी भी प्रकार के नेटवर्क उपस्कर का प्रयोग कर सकते हैं जिनमें सर्किट तथा पैकेट स्विच शामिल हैं, जो सुसंगत अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (आईटीयू) दूरसंचार इंजीनियरी केंद्र (टीईसी) मानक पूरे करते हों।

1 अप्रैल, 2000 से सेल्युलर मोबाइल टेलीफोन सेवाओं के लिए स्पेक्ट्रम प्रभावों को छोड़कर शुल्क मेट्रो सेवा क्षेत्रों तथा श्रेणी (क) सर्किलों के लिए समायोजित सकल राजस्व (एजीआर) का 10% है, श्रेणी (ख) सर्किलों के लिए 8% तथा श्रेणी (ग) सर्किलों के लिए एजीआर का 6% है। वर्तमान समय में मोबाइल फोन की 3जी प्रौद्योगिकी कार्यरत है जबकि भारत में 2जी प्रौद्योगिकी 2001 में आयी।

इलेक्ट्रॉनिक तथा डिजिटल गवर्नेंस

ई गवर्नेंस का अर्थ, नागरिकों को सरकारी सेवाएं तथा सरकारी कार्यकलापों की जानकारी एवं नागरिकों द्वारा इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से अन्तर्क्रिया की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सूचना का अधिकार लागू होने के कारण इसका महत्व वर्तमान में और भी बढ़ा है। ई शासन के उपयोग से शासन प्रणाली अधिक पारदर्शी, कुशल तथा जवाबदेह बनाई जा सकती है। भारत में अनेक राज्यों द्वारा इसकी स्वागतयोग्य पहल के कारण केन्द्र सरकार ने भी इसके लिए योजनाएं तथा कार्यक्रम बनाए हैं।

डिजिटल शासन का अर्थ, सभी प्रकार की शासन संबंधी जानकारी के डिजिटलाइजेशन से है। इसके लिए शासन संबंधी सभी सूचनाओं को इण्टरनेट पर उपलब्ध करा दिया जाता है। इसमें आम जनता तक पहुंच के लिए भू-अभिलेख, भू-राजस्व व कर संबंधी दस्तावेज से लेकर जाति प्रमाण पत्र, मतदाता सूची तथा विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएं भी आती हैं।

प्रश्न 17. भारतीय नौ सेना के हल्के लड़ाकू विमान का वर्णन कीजिए।

उत्तर

नौ सेना के लिए हल्का लड़ाकू विमान

भारतीय नौसेना की आवश्यकता और हिन्द महासागर में अपनी रक्षा तथा प्रहारक शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 28 मार्च 2003 को यह परियोजना मंजूर कर ली। इस परियोजना के अन्तर्गत भारतीय नौसेना के लिए हल्के विमानों का निर्माण कार्य 2010 तक पूरा करना है। इस योजना में नौ सेना के लिए दो प्रकार के विमानों का निर्माण किया जायेगा। इसका प्रथम माडल ढाँचागत परीक्षण करने के लिए तथा दूसरा माडल सैन्य संक्रियात्मक परीक्षण के लिए होगा। इसका पहला प्रोटोटाइप -1 दो सीटों वाला प्रशिक्षण विमान तथा दूसरा प्रोटोटाइप-2 एक सीट वाला लड़ाकू विमान होगा।

इन हल्के लड़ाकू विमानों के लिए कावेरी इंजन का विकास किया जा रहा है। इन इंजनों के सोलह सेट तैयार कर लिये गये हैं। इसके उपरान्त इन इंजनों का भारत में 50 घण्टे जमीनी परीक्षण तथा 80 घण्टे का उड़ान परीक्षण किया जा चुका है। इसके वर्तमान डिजाइन को संशोधित कर इसके भार को 1235 किग्रा. से 1100 किग्रा किया गया है। इस इंजनके उत्पादन और डिजाइन के लिए परस्पर साझेदारी की सम्भावनाओं को तलाशा जा रहा है, जिससे रक्षा उद्योग को उत्पादन एवं निर्यातोन्मुखी बनाया जा सके। बहुत से रक्षा विशेषज्ञों का ऐसा मानना है कि आज की स्टील्थ क्षमता, जो उत्तरजीविता के लिए आवश्यक है, के समय में भारत द्वारा विकसित इंजनों की कोई उपयोगिता नहीं है।

भारतीय नौसेना के जहाजों के लिए कावेरी मरीन गैस टरबाइन इंजन (K.M.G.T.E.) के विकास में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। इस इंजन का गैस टरबाइन रिसर्च स्टैबलिशमेन्ट में परीक्षण जारी है तथा इस तकनीकी का प्रदर्शन भारतीय नौसेना में भी किया गया है। इस इंजन के दूसरे चरण का भी परीक्षण कार्य प्रारम्भ हो गया है।

चालक रहित विमान लक्ष्य

यह एक ऐसी हवाई प्रणाली है, जिसका प्रयोग जमीन से ही रिमोट द्वारा संचालित कर किया जाता है। भारत द्वारा विकसित और निर्मित इस प्रणाली का नाम 'लक्ष्य' रखा गया है। इस प्रणाली का प्रयोग 1991 के खाड़ी युद्ध में सफलतापूर्वक किया गया और इस प्रणाली द्वारा शत्रु

के क्षेत्र के बारे में ऐसी सूचनाएँ प्राप्त करने में सफलता मिली, जिनको प्राप्त करने के लिए वायु सेना के महत्वपूर्ण विमान और पायलट दोनों के नष्ट होने का खतरा उठाना पड़ता था। इस विमान में कोई पायलट (जन शक्ति) नहीं होता तथा छोटे इंजन की सहायता से 4 से 5 घण्टे की उड़ान भरता है। इस विमान की सतह को ऐसी सामग्री की सहायता से बनाया जाता है कि वह रडारों की तरंगों तथा ऊर्जा को अवशोषित कर लेती है, जिससे इसे खोज पाना सरल नहीं होता है। जमीन पर स्थित केन्द्र से विमान पर कमाण्ड एण्ड कंट्रोल बनाये रखने के लिए आवश्यक सूचना आदान प्रदान करने वाले उपकरण तथा माइक्रो प्रोसेसर लगे हैं। शत्रु क्षेत्र की सूचनाएँ आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों द्वारा संकेतिक प्रणालियों से नियन्त्रण केन्द्र तक पहुँचाती है, जिससे शत्रु इन संकेतों और सूचनाओं को अवशोषित न कर सके। अतः इस प्रणाली का प्रयोग युद्ध तथा शान्ति दोनों ही समय सैनिक तथा असैनिक गतिविधियों की गुप्त सूचना तथा आसूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

इस सजीव चित्रो को देखकर युद्ध के दौरान अपनी सामरिक गतिविधियों तथा आक्रमणात्मक कार्रवाइयों को सम्पन्न किया जाता है। इस प्रणाली की सहायता से शत्रु के विमानों, प्रक्षेपास्त्रों, सैनिक टुकड़ियों, टैंकों, तोपों, राकेट लान्चरों की स्थिति की सूचना युद्धक विमानों को हवा में प्रदान की जाती है, जिससे सूचक आक्रमण तथा रक्षा की सुविधा प्राप्त होती है। इसे प्रक्षेपक की सहायता से या किसी विमान की सहायता से हवा में प्रक्षेपित किया जाता है। सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसे चार अलग-अलग स्थिति में उड़ाया जाता है। प्रथम स्थिति में विमान को नियन्त्रण केन्द्र की सहायता से संचालित और नियन्त्रित किया जाता है। दूसरी, स्थिति में शत्रु के सैनिक तथा गुप्तकेन्द्रों की जानकारी प्राप्त करते समय विमान पूर्व में निर्धारित दिशा निर्देशों के अनुरूप कार्य करता है तथा इस समय उसे नियन्त्रण केन्द्र से निर्देशित नहीं किया जाता है और बाद में सम्पर्क स्थापित कर लिया जाता है। तीसरी, स्थिति अनियन्त्रित होती है, जब विमान नियन्त्रण केन्द्र के रडार की पकड़ से बाहर निकल जाता है तथा वापस आने पुनः नियन्त्रण के साथ जुड़ जाता है। चौथी, स्थिति में एक रोबोट की सहायता से विमान को उड़ाया जाता है जो हर पल की सूचना अपने केन्द्र, युद्धक विमानों, प्रक्षेपास्त्रों तथा वायु केन्द्रों को भेजता रहता है। यह नियन्त्रण केन्द्र गतिशील वाहन पर स्थापित होता है। इस विमान का अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, इजराइल, कनाडा, रूस, चीन आदि देश प्रयोग और उत्पादन कर रहे हैं। भारत भी तीन दशकों से इस दिशा में कार्य कर रहा है। 1982 में गणतन्त्र दिवस पर प्रदर्शित प्रारूप 'चकोर' था। लक्ष्य, फाल्कन तथा 1996 निशान्त का सफल परीक्षण किया गया। लक्ष्य तथा निशान्त विमानों को सेनाओं को सौंप दिया गया तथा इसकी तकनीकी को हिन्दुस्तान एअरोनाटिक्स लि. को सौंप दिया गया है जो सेना की आवश्यकताओं के अनुरूप इनका उत्पादन करेगी।

सैनिक उद्देश्यों और प्रयोगों के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियाँ

सेना में प्रयोग की जाने वाली आयुध प्रणालियों तथा अनेक असैनिक कार्यों के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियों का दिन-प्रतिदिन प्रयोग व्यापक होता जा रहा है। इसका प्रारम्भ वियतनाम युद्ध से हुआ। आज विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियाँ सैनिक शक्ति प्रवर्धक के रूप में जानी जाती हैं। शत्रु के विरुद्ध घातक प्रहार के लिए आयुध द्वारा लक्ष्य खोजना तथा प्रहार के समय नियन्त्रण रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस क्षमता के लिए लेजर तथा फोटोनिक्स पर आधारित इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली की आवश्यकता पड़ती है। शान्ति तथा युद्ध दोनों ही कालों में इलेक्ट्रॉनिकी

का प्रयोग सैनिक एवं असीनिक कार्यों की पूर्ण करने के लिए किया जाता है। इलेक्ट्रानिकी के संचालन, कमाण्ड, कंट्रोल, कम्युनिकेशन, इन्फार्मेशन, इंटेलिजेंस तथा आयुध प्रणालियों के संचालन और में अभूतपूर्व परिवर्तन कर दिया है। इसके अतिरिक्त असीनिक क्षेत्रों में जैसे ऊर्जा उत्पादन, सौंकिंग, परिवहन, संचार, उद्योग, रेल, अन्तरिक्ष आदि अनेक केन्द्रों के संचालन में इलेक्ट्रानिकी की भूमिका बहुत निर्णायक हो गई है। युद्ध और शान्ति के दौरान राष्ट्र के इन महत्वपूर्ण घटक को निर्बाध संचालन अनिवार्य होता है तथा अब ये शत्रु की गतिविधियों के केन्द्रीय लक्ष्य बन गये हैं। क्योंकि इलेक्ट्रानिकी द्वारा संचालित इन केन्द्रों को बन्दकर या अवरोधित कर शत्रु को आशुषों की तुलना में कहीं अधिक क्षति पहुँचाई जा सकती है। इस क्षति का प्रभाव बहुत ही व्यापक और दूरगामी होता है, क्योंकि आज विश्व का हर क्षेत्र एक दूसरे के साथ जुड़ गया है। आधुनिक युद्ध के इतिहास में अनेक निर्णायक सफलता इलेक्ट्रानिकी के सफल एवं कुशल प्रयोग द्वारा प्राप्त की गई। खाड़ी के दो युद्धों तथा अफगानिस्तान युद्ध से सिद्ध कर दिया है कि अब युद्ध में इलेक्ट्रानिकी कौशल और क्षमता के बिना सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती है। इलेक्ट्रानिकी का प्रभाव युद्ध के सभी मूल-भूत आयामों तथा अंगों पर पड़ा है। युद्ध क्षेत्र व्यापक हो गया, खोतेजी में आमूल परिवर्तन, सामरिक क्षेत्र थल, जल, वायु से उठकर अन्तरिक्ष तक जा पहुँचा, आपूर्ति तन्त्र हवा में ही आपूर्ति प्रदान कर संहारक क्षमता को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं। सैनिक मुख्यालय का सैनिक के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। आज की आधुनिक सेना सैन्य संक्रिया में कमाण्ड, कंट्रोल, कम्युनिकेशन, कम्प्यूटर और इंटेलिजेंस एवं इनफार्मेशन की प्रणाली का प्रयोग करती है। अतः इन सभी तत्वों की सुरक्षा, विश्वसनीयता तथा उत्तरजीविता अनिवार्य है। इलेक्ट्रानिकी के बढ़ते प्रयोग ने इलेक्ट्रानिक युद्ध, सूचना युद्ध, अन्तरिक्ष युद्ध, जैसे अनेक नए आयामों को जन्म दिया।

नौसेना के प्रयोग की प्रणालियाँ

भारत तीन ओर समुद्र से घिरा होने के कारण एक समुद्र तटवर्ती राष्ट्र है, इसके लिए हिन्द महासागर एक जीवन रेखा के समान है जो राष्ट्र के 90% से भी ज्यादा व्यापार और वाणिज्य को अपने में समाहित किए हुए। अतः सामुद्रिक शक्ति और नौ सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता ही हमारी आत्मनिर्भरता के ठीक समानुपाती है। अतः सामुद्रिक और नौ सैनिक अनुसंधान एवं विकास न केवल हमारी रक्षा आवश्यकताओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि हमारी संप्रभुता, सुरक्षा, विकास और समृद्धि तथा आत्मनिर्भरता का एक अनिवार्य आयाम है। नौसैनिक अनुसंधान एवं विकास संगठन अनेक प्रकार की गतिविधियों में संलग्न है, जिनमें पनडुब्बी रोधी युद्धकला के लिए सोनार प्रणालियाँ, समुद्र तल पर स्थित पोतों, बेडों, विध्वंसकों, निगरानी तथा निरीक्षण पोतों के बीच तथा समुद्री तल के भीतर तैरती पनडुब्बियों के बीच संचार एवं संपर्क की प्रणाली, जल के भीतर प्रतिरोधी इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली, टारपीडो, समुद्री सुरंग आदि प्रमुख हैं। इसके साथ अनेक प्रकार जीवन रक्षक प्रणालियों का भी विकास किया जा रहा है, जिनका प्रयोग युद्ध और शान्तिकाल दोनों में किया जाता है। नौसेना भौतिक एवं समुद्र विमान प्रणालियों, कोसीन में नाटो तथा रूसी नौसेनाओं की तरह समुद्र के नीचे तथा तल पर स्थित जहाजों के संचार की प्रणाली विकास किया है और इस तकनीकी को उत्पादन केन्द्रों को सौंप दिया गया है। सबमरीन प्रतिरोधी युद्ध-कला के दौरान नष्ट हुई पनडुब्बियों को त्यागते समय की सैनिकों के बचाव के लिए इवास लेने वाले उपकरणों तथा हाइड्रोसूट (गोताखोरो के वस्त्र) का

विकास बंगलौर में किया जा रहा है। सफल परीक्षण के उपरान्त इस उपकरणों का एक सेट भारतीय नौसेना के पोत सातवाहन पर लगाया गया हैं समुद्री कचरे तथा तेल आदि को सोखने के लिए एक सामग्री का विकास किया है, जिसे पनडुब्बियों के लिए विकसित फिल्टरों में प्रयोग किया जा सकता है। यह सामग्री सात मुख्य तथा तीस गौड़ गैसों को अवशोषित करने की क्षमता रखती है।

प्रश्न 18. भारत में हल्के लड़ाकू विमान के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर - हल्के लड़ाकू विमान (एल.सी.ए.) तेजस के निर्माण की योजना

भारत द्वारा हल्के लड़ाकू विमान के विकास की दूरी परियोजना का प्रारम्भ आठवें दशक के अन्तिम वर्ष में हुआ। इस सन्दर्भ में यह भी सूचना प्राप्त होती है कि 1963 में भारत ने मिख से मिलकर (-300 युद्धक विमान बनाने तथा इसके लिए (300 इंजन के निर्माण की संयुक्त परियोजना प्रारम्भ की है। इस इंजन को (24 मारुत में लगाने या (2 प्रशिक्षण विमान में लगाने की योजना थी। परन्तु आधारभूत ढाँचे के अभाव तथा तकनीकी कुशलता में कमी के कारण 1970 के प्रारम्भ में परियोजना को रद्द कर दिया। परन्तु इस परियोजना से इस दिशा में कार्य करने की क्षमता तथा योग्यता में काफी वृद्धि हुई। देश की रक्षा के लिए वायु शक्ति के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा देश में ही युद्धक विमानों के डिजाइन, विकास तथा निर्माण करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए हल्के लड़ाकू विमानों के निर्माण की परियोजना का प्रारम्भ डी.आर.डी.ओ. द्वारा 1980 में प्रारम्भ किया गया। इस विमान को भारतीय वायुसेना में सबसे बड़ी संख्या में विद्यमान मिग-21 विमानों के स्थान पर तैनात करना था। इस योजना को स्वीकृत 1983 में तथा 1984 में इसका दायित्व एरोनाटिक डेवलपमेन्ट एजेन्सी को सौंप दिया गया। 1986 में इस विमान के इंजन के लिए जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी से 11 इंजन खरीदने का समझौता हुआ था। इस परियोजना का सबसे रोचक पहलू यह है कि भारत सरकार ने आज से 35 वर्ष पूर्व कैसे इस प्रकार की उच्च प्रौद्योगिकी परियोजना को अपनी स्वीकृति प्रदान की थी? जिस पर होने वाला अनुमानित व्यय 3000 करोड़ था। दूसरे, वित्त मंत्रालय ने कैसे इस तथ्य पर विश्वास कर लिया भारतीय रक्षा वैज्ञानिकों के पास ऐसी योग्यता है कि वे सुपरसोनिक विमान तथा उसके इंजन का विकास कर लेंगे? जबकि तब तक उन्होंने एक भी विमान का निर्माण न किया हो। इस समस्या का उल्लेख कपूर ने अपनी पुस्तक 'Building a defence technology' में किया है और लिखा है कि इस महत्वाकांक्षी योजना को स्वीकृति प्रदान करते समय वित्त मंत्रालय ने मात्र इतना पूछा कि क्या विशेषज्ञों के निर्णय के अनुरूप प्रशासनिक अधिकारियों एवं वैज्ञानिकों की संख्या की स्वीकृति प्राप्त है? उस समय अनेक भारतीय वैज्ञानिक उच्च स्तरीय विमान के डिजाइन के निर्माण का दावा कर रहे थे। अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि इस योजना का प्रारम्भ हमारी क्षमता के ठीक ठीक मूल्यांकन के बाद ही किया गया होगा। इस कार्य के लिए बंगलौर स्थित 'एरोनाटिकल डेवलपमेन्ट एजेन्सी' के विद्युतपुरा केन्द्र में 1000 वैज्ञानिक निरन्तर लगे हुए हैं। ऐसी उम्मीद की जाती है कि विलम्ब के बावजूद भी अब शीघ्र ही हल्के लड़ाकू विमान को सैनिक सेवा में सम्मिलित कर लिया जायेगा। ऐसा माना जाता है कि यह विश्व का सबसे छोटा बहुआयामी भूमिका वाला लड़ाकू विमान होगा लड़ाकू विमान का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसका इंजन होता है और युद्धक विमानों के जटिल तकनीकी से सुसज्जित शक्तिशाली इंजनों के विकास और निर्माण की क्षमता बहुत कम राष्ट्रों के पास उपलब्ध है। हमारी आधारभूत समस्या यह है कि

आज के रडार और इलेक्ट्रॉनिक वातावरण के अनुरूप क्षमता के इंजन के विकास का विशेष अनुभव नहीं है। यद्यपि हमने ट्रेनों, परिवहन विमानों के अनेक इंजनों का विकास किया, परन्तु सुपरसोनिक विमानों के इंजन बनाने का अनुभव नहीं था। इस परियोजना के निदेशक डॉ. हरि नारायणन ने दवा किया था कि हल्के लड़ाकू विमान के उत्पादन की तिथि 1990 होगी और कालान्तर में कहा कि 1995 में लड़ाकू विमान उड़ान भरेगा। परन्तु आज 35 वर्षों के उपरान्त भी यह बताना कठिन है कि हल्का लड़ाकू युद्धक विमान कब हमारी सेना में प्रयोग किया जाने लगेगा। इस विमान परियोजना में प्रमुख भागीदार हिन्दुस्तान एअरोनॉटिक्स लि. (HAL), एअरोनॉटिकल डेवलपमेण्ट इस्टैबलिशमेन्ट (ADE), गैस टरबाइन रिसर्च इस्टैबलिशमेन्ट (G.T.R.E.), सेन्ट्रल वाइकल रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट इस्टैबलिशमेन्ट (C.V.R.D.E.), नेशनल एअरोनॉटिकल लैबोरेट्री (N.A.L.) और भारतीय वायुसेना (I.A.F.) है।

इसके प्रारम्भिक स्वरूप का निर्माण कार्य 1991 में प्रारम्भ हुआ और इस विमान ने तकनीकी की परीक्षण की उड़ान 2 जून 2001 भरी। इस परीक्षण उड़ान में अमेरिकी इंजन F404 लगा था। अतः भारत ने मात्र पंखों वाला विमान उड़ाया। इस परीक्षण में विमान ने 3000 मी. ऊंचाई तथा 450 किमी. प्रतिघण्टा की गति प्राप्त की थी। प्रारम्भिक परीक्षणों को मात्र पाँच माह में पूरा कर लिया गया। इसके उपरान्त विमान के उत्पादन के द्वितीय चरण का कार्य 2008 तक पूरा कर लिया जायेगा। 2005 तक कुल मिलाकर चार विमानों दो तकनीकी तथा दो प्रोटोटाइप का प्रयोग कर कुल 480 उड़ान परीक्षण पूरे किये गये। तेजस पी-4 और पी-5 का उत्पादन प्रारम्भ हो गया। तेजस विमान के परीक्षण माडल के डिजाइन का कार्य भी पूरा कर लिया गया है। हिन्दुस्तान एअरोनॉटिक्स लि. में प्रतिवर्ष 8 विमानों का उत्पादन किया जा सकता है।

इस विमान के निर्माण में विशेष प्रकार की कार्बन मिश्र धातु का प्रयोग किया जाता है। जिसके कारण विमान का भार कम हो जाता है तथा तीन हजार घण्टों की उड़ान के बाद भी ढाँचे के रख-रखाव के बिना भी इसकी सुदृढ़ क्षमता बनी रहती है तथा यह अधिक मात्रा में विस्फोटकों को ढो सकता है। इस विमान में अपने ही देश में विकसित और निर्मित कावेरी इंजन का प्रयोग किया जायेगा जो इलेक्ट्रॉनिक नियन्त्रण में काम करेगा। इस विमान की उड़ान की वायर प्रणाली श्रेष्ठतम है। सुरक्षा के लिए अनेक अतिरिक्त व्यवस्थाएँ हैं तथा मुख्य साफ्टवेयर के साथ इस अतिरिक्त Back Up साफ्टवेयर भी लगा है। इस विमान में प्रयुक्त रडार विमान की उड़ान तथा विभिन्न प्रणालियों को संचालित करने तथा एक विशेष साफ्टवेयर रडार को हवा से जमीन पर मार करने के विशेष आयुध प्रणाली के चयन की सुविधा का विकल्प भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह विमान विभिन्न लक्ष्यों को ढूँढ़ने, उनको रोकने तथा भूमि का मानचित्र बनाने का कार्य भी एक साथ कर सकती है। इसके साथ ही विमान में अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक काउन्टर काउण्टर मेजर्स तकनीकी तथा आवृत्ति दक्षता का भी प्रावधान है। यह विमान प्रत्येक ऊँचाई पर सुपर सोनिक गति से उड़ने की क्षमता रखता है।

इस विमान के कॉकपिट में विशेष प्रकार के शीशे लगे हैं जिससे पायलट सुगमता पूर्वक बाहर के दृश्य देख सकता है तथा सामने लगे हेडअप डिस्प्ले तथा लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले पर वह की-बोर्ड की सहायता से सभी गतिविधियों का संचालन करता है। इस विमान में प्रारम्भ से ही उच्च कोटि की विश्वसनीयता, विमान के संचालन की कम लागत तथा रख-रखाव की कम लागत तथा कम ईंधन खपत की परिकल्पना के कारण ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यह लगभग बीस वर्षों तक भारतीय वायुसेना में प्रयोग किया जा सकेगा।

प्रश्न 19. परम्परागत युद्ध बनाम नाभिकीय युद्ध का वर्णन कीजिए।

उत्तर

(Conventional War Vs. Nuclear War)

नाभिकीय भय निवारण के स्वरूप, क्षेत्र तथा सिद्धान्त का परीक्षण करने के उपरान्त हमारे यह महत्वपूर्ण है कि हम परम्परागत तथा नाभिकीय युद्धकला के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण करें। इस विश्लेषण को शुरू करने के पूर्व हमें शायद इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि क्या परम्परागत युद्धकला में नाभिकीय शास्त्रों का कोई स्थान है? वैसे बहुत से लोग इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक देते हैं, फिर भी हमें यह ध्यान रखना होगा कि बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि किस पक्ष में पहल करने और शस्त्रों की क्षमता के साथ-साथ उन्हें सही समय पर सही जगह पहुंचाने की शक्ति है। यह स्वयं एक समस्या के अन्तर्गत एक अन्य समस्या पैदा करता है।

परम्परागत युद्धकला से किसी का ध्यान हटाना सदैव कठिन कार्य होता है क्योंकि उसमें अनुभव और व्यवहार दोनों मौजूद होता है, अन्यथा हमें सैन्य इतिहास का अध्ययन क्यों करना चाहिए? वास्तव में अतीत की सैन्य मुहिमों ने ऐसे अर्थपूर्ण उदाहरणों को प्रस्तुत किया है जहाँ नये शस्त्रों ने तत्कालीन एवं आचरणों में सम्पूर्ण क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इससे भी अधिक, खोजेजी विशेष रूप से सैन्य खोजेजी ने युद्ध के चरित्र और खोजेजिक वातावरण को सदैव प्रभावित किया है। खोजेजी का सूत्रीकरण न्यूनाधिक रूप से निम्न तीन मूल पूर्वधारणाओं पर आधारित होता है।

(1) सैन्य शक्तियों के पीछे राजनैतिक उद्देश्य (Political Objective behind Military Forces) - विभिन्न राष्ट्रों के राजनीतिक लक्ष्य सदैव व्यापक रूप से परिवर्तित होते रहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सँजोई गई राष्ट्रीय परम्पराओं, भिन्न जीवन शैली, सम्प्रभुता, प्रतिष्ठा और धन को सुरक्षित रखना चाहता है। किसी देश की उसके पहले से सुरक्षा, अर्जित किए गये मूल्यों की सुरक्षा को सुनिश्चित करती है। सुरक्षा की मात्रा किसी राष्ट्र के आक्रमण को रोकने या इसके बाद पराजित करने की क्षमता के साथ बढ़ या घट सकती है। सुरक्षा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से मूल्यों को अर्जित करने हेतु धमकियों के अभाव को तथा वैयक्तिक दृष्टिकोण से ऐसे मूल्यों पर आक्रमण किये जाने के भय के अभाव को मापती है। व्यापक संदर्भ में सुरक्षा उन सभी कार्यवाहियों को समाविष्ट करती है जिनके द्वारा समाज अपनी उत्तरजीविता को सुनिश्चित करने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी आकांक्षाओं का पुनः परीक्षण करता है। यद्यपि यह एक उच्चस्तरीय परिवर्तनशील अवधारणा है, फिर भी सुरक्षा को अन्य राजनैतिक परिरूपों जैसे कब्जे, प्रभुत्व, आर्थिक झुकाव, धार्मिक तथा राजनीतिक सुसमाचारवाद (Evangelism) और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सुधारों से अलग करना कठिन है।

(2) उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सैन्य बलों की तैनाती (Development of forces to realise objectives) - उपरोक्त प्रथम और द्वितीय पूर्वधारणाओं में निकटस्थ सम्बन्ध होता है अर्थात् राजनैतिक लक्ष्य और सैन्य बलों की तैनाती अत्यन्त निकट से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। राजनैतिक उद्देश्यों का निष्पादन व्यापक रूप से राष्ट्र के सैन्य बलों की तैनाती को प्रभावित करता है अर्थात् कहाँ सैन्य बलों को रखना होगा और कौन से सैन्य बल तैनाती के लिए उपलब्ध होंगे?

(3) शत्रुता के विषय में शक्ति का उद्देश्य (Use of force in case of hostilities) - यह कुछ सामान्य विचारों को शामिल करती है कि क्या सैन्य शक्तियों के राजनैतिक उद्देश्यों के वैज्ञानिक सिद्धान्त या उनकी तैनाती का विकास किया जा सकता है? बेलाजविट्ज के अनुसार

ऐसा करना सम्भव नहीं है लेकिन साथ ही साथ उन्होंने श्रृंखलाओं की एक सूची प्रस्तुत की जिसके आधार पर युद्ध का विश्लेषण और उसकी किसी दूसरे युद्ध के साथ तुलना की जा सकती है। क्लॉजविट्ज के विचारों ने युद्ध को मात्र दो राजनीतिक समुदायों या सामुदायिक समूहों के मध्य संघर्ष तक सीमित नहीं किया बल्कि उन्होंने इसका विस्तार हिंसा के मध्य संघर्ष तक किया उन्होंने जैसा कि देखा था, युद्ध में शामिल हिंसा के तीन तत्व होते हैं प्रथम भौतिक शक्ति की औद्योगिक क्रांति के पूर्व भौतिक शक्ति मानव शक्ति से संबंधित थी अर्थात् एक राष्ट्र की सैन्य क्षमता उसके द्वारा संग्राम स्थल में तैनात की गई सेना के आकार पर निर्भर करती थी। द्वितीय तत्व मनोबल था। क्लॉजविट्ज का कहना था कि सेना को जितना प्रोत्साहित किया जायेगा उतना ही संग्राम स्थल में उसका प्रदर्शन बेहतर होगा। तीसरा तत्व हिंसा थी, जिसे क्लॉजविट्ज ने युद्ध के लिए सेनाध्यक्षों की प्रतिभा कहा है। इससे उनका तात्पर्य सेनाध्यक्षों की उस निपुणता से था जिससे वे लड़ने के लिए सही क्षण का चयन करने के साथ सैन्य टुकड़ियों को प्रेरित कर अपनी चारों ओर के अनुरूप रणक्षेत्र में लगाते हैं।

स्त्रातेजी (Strategy) : नाभिकीय शस्त्रों के आविर्भाव ने राजनीतिक एवं सैन्य विशेषज्ञों को इन सभी पहलुओं पर तत्काल पुनर्चिन्तन करने के लिए बाध्य किया। वास्तव में नवीन सैन्य खोजों ने यहाँ तक कि सन् 1945 के पूर्व भी युद्ध के आचरण को प्रभावित किया लेकिन नाभिकीय क्रांति बहुत तेजी से आयी। विध्वंसक क्षमता की मात्रा को जिसको नाभिकीय शस्त्र भण्डारों ने राजनीतिक नेताओं के हाथों में सौंपा था वह बहुत अधिक थी। इस विचार ने व्यापक रूप से परम्परागत स्त्रातेजी को प्रभावित किया जिसे नाभिकीय शस्त्रों को धीरे-धीरे या परीक्षण व त्रुटि के रूप में नहीं अपनाया जा सकता था। 'हरकावी' के शब्दों में, नाभिकीय युग में "स्त्रातेजी युद्ध न करने की और युद्ध को रोकने की कला में परिवर्तित हो गयी थी। पहले इसे हिंसा के निपुण प्रयोग के द्वारा परिभाषित किया जाता था और आज यह शक्ति के निपुण प्रयोग न करने की कला बन गयी है। हिंसा की धमकी के द्वारा अर्थात् उत्तेजना के प्रत्युत्तर में प्रतिकार की धमकी के द्वारा युद्ध को रोका जा सकता है। स्त्रातेजी हिंसा के प्रयोग करने की कला से हिंसा की धमकी देने की कला में परिवर्तित हो गयी है जो भय निवारण की कला है।"

व्यय एवं ख़तरे (Costs and risks) : युद्ध में शामिल राजनीतिक और सैन्य व्यय एवं ख़तरों के संदर्भ में परम्परागत और नाभिकीय स्त्रातेजीके मध्य भारी अन्तर है। परम्परागत संग्राम भूमि में व्यय युद्ध के परिणामस्वरूप हुए सैन्य हताहतों की संख्या, उपकरणों के खोने या नष्ट होने तथा असैनिक घायलों की संख्या और सैन्य बलों को गतिशील बनाने, उनकी तैनाती एवं उन्हें व्यवस्थित रखने पर हुए खर्च का फलन होता है। यद्यपि परम्परागत स्तर पर व्यय एक महत्वपूर्ण चर होता है। लेकिन इस स्थिति में यह उतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना नाभिकीय स्तर पर होता है क्योंकि परम्परागत युद्ध में सम्पूर्ण सभ्यता को कुछ दिनों या मात्र कुछ घण्टों में समाप्त करने की कोई सम्भावना नहीं होती है। इतिहास स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करता है कि परम्परागत युद्ध से जुड़ी क्षतियों को निर्णायकता सही परिस्थितियों में स्वीकार करने के लिए तैयार रहने के लिए है। इसका एक कारण यह होता है कि परम्परागत युद्ध में व्यय धीरे-धीरे बढ़ता है और इस कारण पहले से ही युद्ध पर होने वाले व्यय का अनुमान लगाना एक कठिन कार्य होता है। इसका एक उल्लेख उदाहरण प्रथम विश्व युद्ध है जहाँ सामने आने वाली क्षतियों को इनके प्रत्यक्ष रूप से आने के पूर्व बहुत कम आँका गया था।

ख़तरा जो परम्परागत युद्ध से बचाता है, वह पराजित होने का भय होता है। दूसरे शब्दों में, परम्परागत स्तर पर ख़तरा इस बात का होता है कि विजय दूसरे पक्ष को मिलेगी। परम्परागत

तथा नाभिकीय स्तरों के मध्य यह अन्तर काफी है क्योंकि नाभिकीय विध्वंस दोनों पक्षों को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है परन्तु परम्परागत युद्ध में विजय केवल एक पक्ष को मिलती है। चूंकि विजय आक्रामणात्मक और रक्षात्मक क्षमताओं पर निर्भर रहती है इसलिए परम्परागत स्तर पर खतरा आक्रामणकारी और रक्षाकारी दोनों की क्षमताओं का फलन होता है। अतः परम्परागत ध्व निवारण विशिष्ट सैन्य रणनीतियों का प्रत्यक्ष फलन होता है।

किसी नाभिकीय युद्ध की विशाल विध्वंसक क्षमता से कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि युद्ध में कोई विजेता भी होगा। इस प्रकार के युद्ध में विजय की अवधारणा का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि दोनों पक्ष पराजित होते हैं। ब्रोडी के शब्दों में, बम से संबंधित सभी चीजे इन जुड़वा तथ्यों के द्वारा ढक ली गयी हैं कि ऐसे शस्त्र मौजूद हैं और उनकी विध्वंसक क्षमता अत्यधिक है। नाभिकीय युद्ध की विशाल विध्वंसक क्षमता के कारण इसे अन्य साधनों के द्वारा नीति के पुनरारम्भ के रूप में नहीं माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, नाभिकीय शस्त्रों ने नाभिकीय युद्ध को अव्यवहारिक बना दिया है।

परम्परागत युद्ध कला में मूल प्रयास कार्य कुशलता और अर्थव्यवस्था को बनाये रखना होता है। परम्परागत संदर्भ में भारी बमबारी को न्यायसंगत खतरे के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु नाभिकीय शस्त्रों के मामले में ऐसी स्थिति नहीं होती है। यह माना गया है कि रक्षा को निष्क्रिय आक्रमण के विरुद्ध शस्त्रों के विस्तृत प्रसार की मूल आवश्यकता होती है। परम्परागत युद्ध कर्म में ऐसे विस्तृत प्रसार को अस्वीकार कर दिया जायेगा।

तब पुनः परम्परागत युद्ध कर्म में बुद्धि का अधिक महत्व होता है। युद्ध के संचालन में नीति निर्माण हेतु खातेजी ने सदैव अच्छी बुद्धि पर भरोसा किया। फिर भी नाभिकीय युद्ध कर्म से सम्बद्ध समस्याओं को देखते हुए शत्रु के उद्देश्यों के बारे में पूर्वानुमान लगाने की अचूक क्षमता होनी चाहिए। इसीलिए यह माना गया है कि नाभिकीय शस्त्रों के प्रयोग का कोई भी निर्णय राजनीतिक होगा।

परिणाम-नाभिकीय शस्त्रों का प्रयोग, निश्चयात्मक रूप से संग्राम पर लगायी नयी सैन्य टुकड़ियों की संख्या और वहाँ तैनात किए गए साधनों में परम्परागत युद्धों में होने (i) क्षेत्र की आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहन देना, सामाजिक प्रगति को नये आधार देना और सांस्कृतिक धरोहरों को प्रकाश में लाना। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को उसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुए सम्मानित जीवन बिताने के समुचित अवसर प्रदान करना। (ii) दक्षिण एशिया के देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता की स्थिति विकसित करना और उसे मजबूत करना। (iii) एक दूसरे की समस्याओं को समझते हुए परस्पर विश्वास और समझदारी बढ़ाना।

मुख्यतः देखा जाय तो यह संगठन दक्षिण एशिया के नागरिकों को मित्रता, विश्वास तथा परस्पर अनतर्समझ की भावना के साथ कार्य करने हेतु एक मंच उपलब्ध कराता है एवं इस संगठन की स्थापना इस शर्त के साथ हुई कि कोई भी द्विपक्षीय असंगति, आपसी टकराव या आलोचना प्रत्यालोचना के लिए अवसर न दिये जाये। यही कारण रहा है कि भारत सदा इस बात का पक्षधर रहा है कि सार्क देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग को बढ़ाने के लिए बना था और इसका प्रयोग राजनीतिक मतभेदों के लिए नहीं होगा।

प्रश्न 20. भारत के दूसरे पोखरन परमाणु परीक्षण की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

भारत का दूसरा पोखरन परमाणु परीक्षण

भारतीय इतिहास में 11 मई, 1998 एवं 13 मई, 1998 का दिन गौरव के साथ याद किया जायेगा। क्योंकि भारत जैसे विशालतम लोकतन्त्र एवं विश्वशांति में गहरी आस्था रखने वाले राष्ट्र

के लिए 48 घंटे के अन्दर पाँच परमाणु परीक्षणों की सफलता अर्जित कर लेना जहाँ एक ओर इसकी वैज्ञानिक उपलब्धि, तकनीकी दक्षता एवं सामरिक सामर्थ्य का परिचायक है, वहीं विभिन्न बड़े एवं परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्ध तथा धमकियों के सम्मुख गर्वोन्नत वक्ष लेकर खड़ा रहने कोई साहस इसके दृढ़ आत्मबल एवं स्वाभिमान का भी द्योतक है। निःसन्देह यह कोई आकस्मिक घटित घटना नहीं, वरन् एक दीर्घ वैज्ञानिक अनुसंधान व हमारी सतत तकनीकी उन्नयन का ही प्रतिफल है कि आज भारत उन शक्तिशाली राष्ट्रों की पंक्त में लाकर खड़ा कर पाया है, जो वास्तव में शक्तिसम्पन्न राष्ट्र हैं। यद्यपि भारत की देखा-देखी या ईर्ष्यावश भारत के पड़ोसी पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण करके अपने को विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु भारत और पाकिस्तान द्वारा किये गये परीक्षणों में कतिपय मूलभूत अन्तर है। भारत ने जहाँ स्वदेश में ही विकसित एवं पूर्ण स्वदेशी तकनीक व युक्तियों से परमाणु आयुध क्षमता का विकास किया, वहीं आरोप है कि पाकिस्तान को यह तकनीक चीन से प्राप्त हुई है।

भारत विश्व का पहला देश है जिसने एक दिन के अन्तराल पर अलग-अलग तरह के पाँच भूमिगत परमाणु परीक्षणों की शृंखला पूरी कर ली। इस परीक्षण शृंखला के माध्यम से भारत सभी प्रकार के परमाणु हथियार बनाने में सक्षम हो गया है। इस बार के परीक्षण घोषित रूप से परमाणु आयुध बनाने के निर्मित किए गये। साथ ही भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC) की सैनिक उद्देश्य से चलाई जा रही गुप्त परियोजनाओं को विज्ञान व तकनीकी मंत्रालय से स्थानांतरित कर रक्षा मंत्रालय के अधीन कर दिया गया है।

भारत ने मात्र छः परीक्षणों के मध्य से आण्विक प्रौद्योगिकी में बहुआयामी सफलता अर्जित कर ली है, जबकि अमेरिका, रूस, चीन, ब्रिटेन व फ्रांस जैसी परमाणु शक्तियों को इस तरह की उपलब्धि अर्जित करने के लिए भारत से कई गुना अधिक परीक्षण करने पड़े थे। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि हम इन विकसित देशों से अपेक्षाकृत कम समय एवं कम खर्च करके एक लम्बी छलाँग लागकर पाँचों परमाणु शक्तियों के समकक्ष जा खड़े हुए। अब भारत परमाणु अप्रसार संधि (NPT) और व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि (CTBT) के संदर्भ में अपना पक्ष अधिक दृढ़ता एवं मजबूती से सक्षम हो सका है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत की परमाणु अस्त्र बनाने की क्षमता इसके शांतिपूर्ण और रचनात्मक उद्देश्यों से चलाये जा रहे परमाणु अनुसंधान कार्यक्रम के गर्भ से उत्पन्न हुई है। वह भी व्यापक वैश्विक असहयोग की विषम परिस्थिति को झेलते हुए। अमेरिका जैसे देश वर्षों से न केवल भारत के परमाणु कार्यक्रम को हतोत्साहित करते रहे हैं, बल्कि भारत के परमाणु बिजली घरों को भी ईंधन की आपूर्ति करने से कतराते रहे हैं। यही नहीं अमेरिका ने अपने कूटनीतिक प्रभाव का प्रयोग करते हुए इस बात की यथासम्भव कोशिश की कि रूस जैसे भारत के मित्र राष्ट्र भी भारत को किसी ऐसे उपकरण अथवा प्रौद्योगिकी की आपूर्ति न करें जिनका प्रयोग वह अपने परमाणु कार्यक्रम के विकास में कर सके। भारत ने अपनी क्षमताओं एवं आत्मबल के बूते अपने परमाणु कार्यक्रम को जारी रखा। उल्लेखनीय है कि हाल के परीक्षणों में 'प्लूटोनियम 239' का इस्तेमाल किया गया जिसे प्रयुक्त ईंधनों के संसाधन से प्राप्त किया गया। इन पाँच परीक्षणों में एक तापनाभिकीय उपकरण (Thermo Nuclear Device) तथा तीन मंद क्षमता उपकरण (Low Yield Device) सम्मिलित हैं। ताप नाभिकीय उपकरण एक अत्यन्त उन्नत प्रकार का नाभिकीय उपकरण है जिसे बनाने की क्षमता अभी तक केवल अमेरिका एवं रूस के पास मौजूद थी। इसकी विनाशक क्षमता 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा पर गिराये गये

परमाणु बम की तुलना में 1000 गुना से भी अधिक है। मन्द क्षमता उपकरणों को आमतौर पर 'सौ किलोटन उपकरण' कहा जाता है। ऐसा इसलिए कि उनकी क्षमता 1 किलोटन से कम है। वे उपकरण सामरिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अपेक्षाकृत हल्के होने के कारण इन्हें भारत में अबतक विकसित किये जा चुके प्रक्षेपास्त्रों के द्वारा ही प्रक्षेपित किया जा सकता है। ये छोटे परमाणु बम शत्रु की बड़ी सैनिक छावनी अथवा महत्वपूर्ण अनुसंधान शालाओं आदि जैसे केन्द्रीकृत लक्ष्यों को पूरी तरह नष्ट करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत ने हाल के वर्षों में पाँच अत्याधुनिक किस्म के प्रक्षेपास्त्रों अग्नि, आकाश, नाग, त्रिशूल व पृथ्वी का विकास किया तथा चार अन्य अति उन्नत तकनीक और भयानक विध्वंश क्षमता वाले प्रक्षेपास्त्रों - अस्त्र, सूर्य, सागरिका और धनुष के विकास में यह लगा हुआ है। इस प्रकार अब भारत न केवल विभिन्न प्रकार के परमाणु बम बनाने में सक्षम हो गया बल्कि अपने ही साधनों के द्वारा इसके भरपूर प्रयोग की क्षमता भी इसने अर्जित कर ली है।

परमाणु वैज्ञानिकों की इस उपलब्धि को यदि हाल की एक अन्य तकनीकी उपलब्धि के साथ जोड़कर देखा जाये तो भारत की तकनीकी क्षमतायें और उनका महत्त्व और उभरकर सामने आता है। अमेरिका और फ्रांस जैसे देशों ने ऐसी तकनीकी विकसित कर ली है जिसके द्वारा वे बिना विस्फोटक किये ही परमाणु बमों का परीक्षण और विकास कर सकते हैं। ऐसा इस प्रकार सम्भव होता है कि पूर्व में किये गये विस्फोटों के आँकड़ों का उपयुक्त संग्रह उसे विशेष प्रकार के अति उच्च क्षमता वाले कम्प्यूटर में संगृहीत करके उनका विश्लेषण किया जाता है और इसी आधार पर गणना करते हुए प्रयोगशाला के अन्दर ही कम्प्यूटर द्वारा परमाणु परीक्षण कर लिए जाते हैं। इस कार्य में प्रयुक्त होने वाले कम्प्यूटर का विकास केवल अमेरिका, फ्रांस और रूस ने किया है। कुछ ही दिनों पहले भारत के कम्प्यूटर वैज्ञानिकों ने "परम-1000" नामक एक अत्यन्त शक्तिशाली सुपर कम्प्यूटर का विकास किया है जो न केवल तीव्र गति से विविधता पूर्ण गणना कर सकता है अपितु परमाणु बमों के प्रयोगशाला परीक्षण को भी अंजाम दे सकता है। ये उपलब्धियाँ वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ही, इनके सम्भावित कूटनीतिक परिणाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

पिछले तीन दशकों की भारतीय परमाणु नीति को यदि गहराई पूर्वक देखा जाये तो उनके विरोधाभास स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। विश्वरंगमंच पर भारत शांति एवं निःशस्त्रीकरण की वकालत सदा से करता रहा है और इसके सद्प्रयासों से आंशिक परीक्षण निषेध संधि (PTBT) लागू हुई थी।

प्रश्न 21. राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए भारत का वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी आधार की व्याख्या कीजिए।

उत्तर - प्राचीन युग में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत विश्व में शिखर पर बैठा हुआ देश था। भारत ऋषियों, मुनियों और शोधकर्ताओं का देश रहा है, जहाँ से ज्ञान-विज्ञान की किरणें फूटकर दुनियाँ को आलोकित करती रही हैं। वेदों, पुराणों और उपनिषदों में ज्ञान-विज्ञान का अमूल्य खजाना छिपा हुआ है। इन ग्रंथों में जिन, दिमानों, आयुधों, बाणों और संवादवाहन के साधनों एवं मंत्र शक्तियों का उल्लेख हुआ है, क्या आज भी विज्ञान वहाँ तक पहुँच सका है? कदापि नहीं। किन्तु यह कोई कपोल कल्पित कहानियाँ नहीं हैं। जैसे-जैसे आज विज्ञान व तकनीकी का विकास होता जा रहा है, वैसे-वैसे क्रमशः इनमें लिखी गयी बातें सत्य प्रमाणित होती जा रही हैं। क्या अभी तक हमारा खोज-खोज

बन सकी हैं, जो लक्ष्य पर प्रहार करके पुनः अपने स्वामी के पास लौट सकें, क्या मार्ग से उन्हें वापस बुलाया जा सकता है, क्या आग्नेपास्त्रों से हुए विध्वंस को तुरन्त ठीक किया जा सकता है, क्या मृतक व्यक्ति को जीवित करने की कला विकसित हो सकी है? नहीं। किन्तु जो लोग इसे कपोल कल्पना मानकर भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का मजाक उड़ाते हैं, उन्हें भविष्य में जैसे-जैसे विज्ञान व तकनीकी का विकास क्रमशः होता जायेगा, उत्तर मिलता जायेगा।

किन्तु हमारा ज्ञान-विज्ञान विदेशी आक्रांक्षाओं द्वारा धीरे-धीरे नष्ट कर दिया गया। जब विदेशी शासन स्थापित हुआ तो भारत को सदा के लिए कमजोर बनाने के कुचक्र के कारण सबसे अधिक चोट हमारे ज्ञान-विज्ञान पर हुई। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया गया। किन्तु इसके लिए विदेशी शासकों से कम जिम्मेदार हम भारतीय भी नहीं रहे हैं। आपसी फूट, राष्ट्र के साथ गद्दारी एवं आलस के कारण हमारा मनोबल टूट गया और विदेशियों ने सत्ता स्थापित रकने में सफलता प्राप्त कर ली।

आज भारत स्वतन्त्र राष्ट्र है, किन्तु जो राष्ट्र अपनी पिछली गलियों से शिक्षा नहीं लेता तो उसकी स्वतन्त्रता को बार-बार चुनौती मिलती रहेगी। भारत जब 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र हुआ तो प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू ने भारत को समृद्ध बनाने हेतु आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी विकास के लिए एक दीर्घकालीन नीति के तहत एक आधारभूत ढांचा तैयार किया और उसकी जो नींव पड़ी उसी का परिणाम है कि हम आज अन्तरिक्ष विज्ञान, नाभिकीय विज्ञान, औद्योगिक विज्ञान, मौसम विज्ञान, कृषि विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर टेक्नॉलोजी आदि क्षेत्र में पुनः विश्व में अपना स्थान प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं।

किन्तु श्री नेहरू से एक भूल भी हुई। विश्वबन्धुत्व एवं अहिंसावादी विचारों के कारण राष्ट्र की प्रतिरक्षा तैयारी पर उतना ध्यान नहीं दिया जो, राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अपेक्षित था। अन्यथा चीन और पाकिस्तान द्वारा हमारा हजारों वर्ग किलोमीटर भू-भाग बलपूर्वक हड़पा नहीं गया होता। भारत की आंख खुल गयी और हम जाग गये, यही हमारे लिए संतोष का विषय रहा।

धन की कमी एवं तकनीकी ज्ञान की अपर्याप्तता के बावजूद आज भारत जो वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति हासिल कर सका है, उसे देखकर शक्तिशाली एवं विकसित राष्ट्र भी आश्चर्यचकित हैं। वास्तव में भारत-भूमि केवल एक जमीन का टुकड़ा ही नहीं है, इसकी एक महान संस्कृति रही है। यहाँ के लोग जब भी राष्ट्रीय सुरक्षा में जागरूक हुए हैं तो कम साधनों से ऐसे चमत्कार करते हैं कि दुनिया भैचक्की हो जाय। भारत की वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमता का उल्लेख एवं झलक आगे के पन्नों में मिल जायेगी।

वैज्ञानिक और तकनीकी विकास : मुख्य आधार

भारत की विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्राचीन-काल की उपलब्धियों से लेकर इस शताब्दी में प्राप्त की गई सफलताओं की एक लंबी एवं अद्वितीय परंपरा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शताब्दी का अर्द्ध भाग अधिकतर विशुद्ध अनुसंधान से संबन्धित रहा है। गत चार दशकों में, अपने राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक ढांचा व सामर्थ्य उत्पन्न कर लिया गया है, जिससे हमारी अन्य देशों पर निर्भरता घट गई है। सुविधाओं, सेवाओं व उत्पादों के विस्तृत क्षेत्रों को पूरा करने के लिए लघु से लेकर अत्यंत उन्नत प्रकार के विभिन्न उद्योगों की स्थापना हो चुकी है।

विज्ञान और तकनीकी बुनियादी सुविधाएँ

भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी गतिविधियाँ केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, उच्चतर शैक्षणिक क्षेत्र, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के उद्योग और बिना लाभ के काम करने वाले संस्थानों/संघों समेत स्थापित विस्तृत ढांचे के अंतर्गत किया जाता है। जिन संस्थागत ढांचों ने अपनी अनुसंधान प्रयोगशालाओं के जरिए देश में अनुसंधान और विकास में प्रमुख योगदान किया है, वे हैं - वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास परिषद, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद। इनके अलावा, विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की विभागीय प्रयोगशालाएँ हैं, जैसे - परमाणु ऊर्जा, विभाग, इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग, अंतरिक्ष विभाग, महासागर विकास विभाग, रक्षा अनुसंधान और विकास संस्था, पर्यावरण तथा वचन मंत्रालय, गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत मंत्रालय और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक निकायों के अंदर लगभग 1,200 अनुसंधान और विकास इकाइयाँ हैं, जो अपने-अपने उद्योगों में अनुसंधान करती हैं। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की समतुल्य आई.आई.टी. जैसी संस्थाओं में भी अनुसंधान और विकास का काफी काम होता है।

भारत की समकेतिक विज्ञान नीति

सन् 1983 में तैयार किए गए वैज्ञानिक नीति संकल्प (टी.पी.एस.) का मूल उद्देश्य स्वनिर्मित तकनीक का विकास तथा देश की प्राथमिकताओं व संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए सही आयातित तकनीकी का सुचारु ग्रहण व अनुकूलन सुनिश्चित करना है। स्वदेशी तकनीकों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करने और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भारत को आत्मनिर्भर तथा प्रतियोगी बनाने के लिए प्रौद्योगिकी नीति बनाई जा रही है।

(1) **विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के कार्यक्रम** - मई 1971 में स्थापित विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग का उद्देश्य नए क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा देना और देश-भर में विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़ी गतिविधियों के आयोजन, समन्वय तथा प्रोत्साहन के लिए नोडल विभाग की भूमिका अदा करना है। इस दौरान विभाग ने नीति संकल्प तथा दिशा-निर्देश बनाए हैं, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के उन क्षेत्रों में समन्वय प्रणाली स्थापित की है, जिनमें अनेक संस्थानों की रुचि और क्षमता है, वैज्ञानिक संस्थाओं और व्यावसायिक संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की है।

(2) **अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम** - विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डी.एस.टी.) विज्ञान तथा अभियांत्रिकी के क्षेत्रों में विभिन्न विषयों के अग्रणी व प्राथमिकता वाले अनुसंधान व विकास क्षेत्रों का पता लगाने व उन्हें बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यह कार्य विज्ञान एवं अभियांत्रिकी अनुसंधान परिषद के माध्यम से किया जाता है, जो एक ऐसी सलाहकार संस्था है, जिसमें आई.आई.टी., विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा उद्योगों के विख्यात वैज्ञानिक व तकनीकी विशेषज्ञ शामिल हैं। प्रत्येक वर्ष विभाग को लगभग 1,000 अनुसंधान प्रस्ताव प्राप्त होते हैं, जिनमें से अधिकांश मूलभूत विज्ञान व अभियांत्रिकी अनुसंधान की श्रेणी में आते हैं। 1999-2000 के दौरान 217 अनुसंधान कार्यक्रमों को वित्तीय सहायता की मंजूरी मिली। भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर सरकार ने स्वर्ण जयंती फैलोशिप योजना शुरू की, जिसका उद्देश्य प्रतिभावना युवा वैज्ञानिकों को विज्ञान में विश्व-स्तरीय क्षमता

प्राप्त कर पाने में सहायता करना है। यह फैलोशिप 30-40 आयु-वर्ग वाले भारतीय वैज्ञानिकों के लिए है, जिन्होंने अनुसंधान के क्षेत्र में उत्तम कार्य किया है और अपने विशिष्ट क्षेत्र में नई ऊंचाइयों को छुआ है। 1999 के दौरान छह युवा वैज्ञानिक को फैलोशिप दी गई।

(3) बुनियादी सुविधाओं का विकास - छठी योजना की अवधि में शुरू किए गए उच्च प्रथमिकता वाले क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा - आई.आर.एच.पी.ए. ने विज्ञान और अभियांत्रिकी के चुनिंदा क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं और अनुसंधान क्षमताओं को मजबूत करने में मदद की है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक के चारों ओर एकांशों/कोर समूहों तथा राष्ट्रीय अनुसंधान सुविधाओं की स्थापना की जाती है, जो उस क्षेत्र में अनुसंधान गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए केंद्र-बिन्दु बन जाता है।

क्षेत्रीय अति-आधुनिक यंत्र केंद्रों (आर.एस.आई.सी.) और अति-आधुनिक यंत्र सुविधा केंद्रों (एस. आई.एफ.) की स्थापना के कार्यक्रम के अंतर्गत विश्वविद्यालयों, अनुसंधान व विकास प्रयोगशालाओं और उद्योगों में काम कर रहे वैज्ञानिकों को अति-आधुनिक विश्लेषक यंत्रों की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सात संस्थानों में आर.एस.आई.सी. को सहयोग दिया जा रहा है। ये हैं - आई.आई.टी चेन्नई; आई.आई.टी मुंबई; बोस संस्थान, कलकत्ता; सी.डी. आर. आई. लखनऊ, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़; एन.ई.एच.यू. शिलांग और नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर। अनुसंधान और परीक्षण का नया अति-आधुनिक यंत्र केन्द्र वल्लभ विद्यानगर, गुजरात में स्थापित किया गया है। एस.आई.एफ., आई.आई.एस.सी., बंगलौर; ए.आई.आई.एन.एम., नई दिल्ली और गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, से काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की, के कार्यक्रम के अंतर्गत ई.पी.एम.ए. सुविधा को भी सहयोग दिया जा रहा है।

(4) प्रौद्योगिकी विकास और संबद्ध कार्यक्रम - विभाग, उद्योगों तथा सामाजिक-आर्थिक मंत्रालयों की मदद से अनेक प्रौद्योगिकी कार्यक्रम की पहचान, संरचना और संचालन में उत्प्रेरण का काम करता है। इस दिशा में विभाग के प्रयासों के फलस्वरूप प्रौद्योगिकी के उभरते हुए क्षेत्रों में बहु-संस्थान कार्यक्रमों की शुरुआत हो पाई। इस कार्यक्रम के भाग के रूप में यंत्र विकास, उन्नत पदार्थ, क्रांतिक प्रौद्योगिकी, शर्करा प्रौद्योगिकी, राख के इस्तेमाल तथा उन्नत कंपोजिट्स जैसे क्षेत्रों में परियोजनाओं को सहयोग मिल पाया।

प्रश्न 22. भारत में जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक एवं सामाजिक परिणामों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तर - किसी प्रदेश में जनसंख्या के वितरण और घनत्व को प्रभावित करने वाले कारकों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारक प्रमुख हैं।

1. आर्थिक कारक (Economic Factors) - किसी भी क्षेत्र में मानव निवास के लिए वहाँ जीविका के किसी न किसी साधन का पाया जाना अनिवार्य होता है। जीविका के साधनों में आखेट, पशुपालन कृषि, खनन, उद्योग-धन्धे, परिवहन, विविध सेवाएं आदि प्रमुख हैं। विश्व के जिस भाग में कोई एक अथवा एक से अधिक आय के स्रोत उपलब्ध तथा विकसित होते हैं, वहाँ निवास के लिए जनसंख्या आकर्षित होती है। कृषि प्रधान देशों के उन भागों में जहाँ उपजाऊ मिट्टी सहित अन्य भौगोलिक परिस्थितियां कृषि के लिए उपयुक्त होती है, वहाँ